संस्थान के प्रकाशन का तृतीय पुष्प

सिरिकुम्मापुत्तचरियं

(मूलपाठ, अनुवाद एवं शब्दार्थ सहित)

भारतीय संविधान की सुलिखित प्रति में अंकित जैनों के
24वें तीर्थङ्कर वर्द्धमान की ध्यानस्थ मुद्रा का चित्र

डॉ. जिनेन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तहंसकृत

सिरिकुम्मापुत्तचरिअं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तहंसकृत

सिरिकुम्मापुत्तचरिअं

(मूल पाठ, हिन्दी अनुवाद एवं शब्दार्थ सहित)

अनुवादक

डॉ. जिनेन्द्र जैन

प्रकाशक

जैन अध्ययन एवं सिद्धान्त शोध-संस्थान

जबलपुर (मप्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तहंसकृत

सिरिकुम्मापुत्तचरिअं

अनुवादक :

डॉ. जिनेन्द्र जैन

सर्वाधिकार सुरक्षित : अनुवादक

प्रथम संस्करण : 2004

मूल्य : रु. 100/

कम्प्यूटराइज्ड
मोदी लेजर कम्प्यूटर सेन्टर
लाडनूं– 341 306 (राजस्थान)

प्रकाशक
जैन अध्ययन एवं सिद्धान्त शोध–संस्थान
श्री पिसनहारी मढिया
जबलपुर (म. प्र.)

SIRIKUMMAPUTTACARIAM **Rs. 100/**

[by Anantahans]

Translated by Dr Jinendra Jain

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

अपनी मेधा
एवं
मौलिक चिन्तन से
प्राच्य वाङ्मय–प्राकृत एवं जैन साहित्य के
चिन्तन–समीक्षण में सतत संलग्न
तथा उसके विकास में
अध्ययन–अध्यापन एवं शोध
के माध्यम से
विद्वानों की लम्बी शृंखला तैयार कर
समाज को अपने
बहुआयामी अवदानों से लाभान्वित करने वाले,
ऐसे
मनीषी गुरुवर एवं भ्राताश्री
श्रद्धेय प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन
के कर–कमलों में
सबहुमान समर्पित!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

कवि के अन्तर्मन से उद्‌भूत विचारों की शृंखला जब शब्द–दर–शब्द आबद्ध होकर एक नये रूप को ग्रहण करती है तब कविता का जन्म होता है। शब्द नये रूप में परिणत होकर, जहाँ कवि के जीवन की अनुभूतियों को उद्‌घाटित करते हैं, वहीं समाज की अन्यान्य चेष्टाएँ भी काव्य के माध्यम से व्याख्यायित होती हैं। इसीलिये साहित्य समाज का दर्पण कहा गया है।

जैन अध्ययन एवं सिद्धाँत शोध–संस्थान प्राच्य–विद्याओं की अकादमिक गतिविधियों को प्रोत्साहन और उन्हें संरक्षण–संवर्द्धन प्रदान करने वाला एक समर्पित संस्थान है। जैन धर्म–दर्शन, इतिहास, संस्कृति तथा प्राकृत साहित्य, भाषा, व्याकरण आदि विधाओं के अनुसंधान के साथ–साथ तत्सम्बन्धित और संस्कृत, हिन्दी भाषा के उत्कृष्ट साहित्य का प्रकाशन करना भी संस्थान का एक विशिष्ट उद्देश्य है।

संस्थान प्राकृत साहित्य की विशिष्ट कथाकृति अनन्तहंसकृत **सिरिकुम्मापुत्तचरिअं** को प्रकाशित करके आप तक पहुँचाने का लघु प्रयास कर रहा है। इस कृति में धर्म के दान, तप, शील और भाव इन चार प्रकारों में भावनाशुद्धि को मानव जीवन के लिए अनिवार्य बताया है। ग्रन्थ में स्पष्ट किया है कि किस प्रकार कूर्मापुत्र भावशुद्धि से केवलज्ञान को ग्रहण करके तपश्चरण करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है। वास्तव में मानव–जीवन मिलने पर जिसने तपश्चरण नहीं किया, उसने अपना जीवन सार्थक नहीं किया। **सिरिकुम्मापुत्तचरिअं** नामक यह धर्मकथा सुधि पाठकों के हाँथों में सौंपते हुए संस्थान हर्ष का अनुभव करता है। संस्थान सदैव प्रयासरत है कि इस तरह के साहित्य–प्रकाशन से वह समाज को हमेशा लाभान्वित करता रहे।

मंत्री

12 नवम्बर, 2004 जैन अध्ययन एवं सिद्धांत शोध–संस्थान

जबलपुर (म. प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

भारतीय वाङ्मय में वैदिक, जैन और बौद्ध साहित्य का अपना विशेष महत्त्व है। इन तीनों धाराओं में जीवन के अनेक मूल्यों को और समाज के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित किया गया है। धर्म एवं दर्शन समाज की मुख्य चिंतनधारा का एक आयाम है। जैन परम्परा में संस्कृत और प्राकृत इन दोनों भाषाओं में विपुल साहित्य लिखा गया। प्राकृत साहित्य में सिरिकुम्मापुत्तचरिअं (अनन्तहंसकृत) एक आख्यायिका ग्रन्थ है। यद्यपि सिरिकुम्मापुत्तचरिअं ग्रन्थ के शीर्षक से यह चरित ग्रंथ प्रतीत होता है, किन्तु विषयवस्तु को ध्यान में रखने से इसकी कथा निर्वेदजननी के रूप में प्राप्त होती है। अतः चरित काव्य की बजाय कथाग्रन्थ की कोटि में इसे रखना उचित होगा।

सिरिकुम्मापुत्तचरिअं के दो संस्करण पूर्व में प्रकाशित हो चुके हैं। अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रो. के. व्ही. अभ्यंकर द्वारा सम्पादित ग्रन्थ का प्रकाशन ई. 1933 में गुजरात कॉलेज, अहमदाबाद द्वारा किया गया था तथा दूसरा प्रकाशन 1973 में श्री प्राकृत भाषा प्रचार समिति, पाथर्डी (अहमदनगर) से प्रा. एम. एस. रणदिवे द्वारा सम्पादित कृति के रूप में मराठी अनुवाद सहित हुआ। हिन्दी अनुवाद की पूर्त्ति इस प्रकाशन के माध्यम से अब पूरी हो रही है। इस प्रकाशित संस्करण में आवरण पृष्ठ पर सिरिकुम्मापुत्तचरियं के स्थान पर सिरिकुम्मापुत्तचरिअं प्राकृत भाषा की दृष्टि से होना उपयुक्त है, किन्तु यह त्रुटि भूलवश संशोधित नहीं हो सकी है। शेष ग्रन्थ में प्राकृत भाषा के नियमानुसार 'अ' को 'अ' ही सुरक्षित रखा गया है, य श्रुति नहीं किया गया है।

सिरिकुम्मापुत्तचरिअं नामक इस प्रकाशित कृति में प्रस्तावना के अन्तर्गत जो विषय प्रतिपादन किया गया है, उसका आधार प्रा. रणदिवे द्वारा सम्पादित कृति ही है। यह संस्करण छात्रोपयोगी बने, इसके लिए हिन्दी शब्दार्थ एवं परिशिष्ट के अंश भी कृति में दिये गये हैं। इसके प्रकाशन में अर्थ–सौजन्य प्रदाता श्रद्धा इलेक्ट्रिकल्स, जबलपुर तथा परोक्ष रूप से सहयोग करने वाले अन्य महानुभाव साधुवाद के पात्र हैं, उनके प्रति बहुत–बहुत आभार।

इस कृति में धर्म के दान, तप, शील और भाव इन चार प्रकारों में भावनाशुद्धि को मानव जीवन के लिए उपयोगी बताया है। ग्रन्थ में स्पष्ट किया है कि किस प्रकार कूर्मापुत्र भावशुद्धि से केवलज्ञान को ग्रहण करके तपश्चरण करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है। वास्तव में मानव–जीवन मिलने पर जिसने तपश्चरण नहीं किया, उसने अपना जीवन सार्थक नहीं किया। अतः यह कृति पाठकों को सन्मार्ग में ला सकी, तो इसकी सार्थकता होगी।

कार्तिक शुक्ला एकादशी — डॉ. जिनेन्द्र जैन

सम्वत् 2061 (22.11.2004)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

समर्पण

प्रकाशकीय

भूमिका

प्रस्तावना i-xii

- 'कुम्मापुत्तचरिअं' का कर्त्ता, समय और स्थल
- 'कुम्मापुत्तचरिअं' का सारांश
- 'कुम्मापुत्तचरिअं' का मूलाधार
- प्राकृत कथा साहित्य की संक्षिप्त परम्परा एवं कुम्मापुत्तचरिअं
- 'कुम्मापुत्तचरिअं' धर्मकथा
- 'कुम्मापुत्तचरिअं' की भाषा

कुम्मापुत्तचरियं : (मूलपाठ एवं अनुवाद) 1–41

शब्दार्थ 42–75

परिशिष्ट : 76–88

(अ) गाथानुक्रमणिका

(ब) ग्रंथ में उद्धृत पात्रों की सम्बद्ध कथाएँ

(स) अतिरिक्त गाथाएँ

(द) जीव द्वारा क्षय की जाने वाली प्रकृतियों का विवरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

'कुम्मापुत्तचरिअं' का कर्त्ता, समय और स्थल

कर्त्ता—प्राचीन भारतीय ग्रंथकारों का हमें अत्यल्प परिचय मिलता है, क्योंकि वे प्रसिद्धिपराङ्मुख थे। इसमें 'कुम्मापुत्तचरिअं' का कर्त्ता अपवाद नहीं।

'कुम्मापुत्तचरिअं' की अंतिम गाथा में ग्रंथकार के बारे में लिखा है—'श्रेहेमविमल इस मंगलमय आचार्यवर्य के श्रीजिनमाणिक्य रजक ने इस (कूर्मापुत्र) प्रकरण की रचना की है—

''सिरिहेमविमलसुहगुरुसिरिजिणमाणिक्करयएणं रइयं पगरणमेयं।''

लेकिन जैन आनन्द पुस्तकालय, सूरत, ई.स. १९१६ और देहला उपाश्रय, अहमदाबाद—इन दो हस्तलिखित प्रति की प्रशस्ति में 'कुम्मापुत्तचरिअं' का कर्त्ता अनन्तहंस है, ऐसा उल्लेख मिलता है। यदि षष्ठी तत्पुरुष समास लिया जाए, तो श्री हेममंगल आचार्य का शिष्य जिनमाणिक्य और जिनमाणिक्य का रज के समान शिष्य (अनंतहंस) था, उसने यह काव्य लिखा होगा, ऐसा अर्थ होता है—

''श्रीहेमविमलः शुभगुरुः यस्य असौ यः जिणमाणिक्यः
तस्य यः शिष्यरजः तेन (अनंतहंसेन) रचितं।''

काव्य की उपान्त गाथा में 'अणंतसुहभायणं हवइ' (अनंतसुख का पात्र है।) ऐसा शब्द-प्रयोग मिलता है। अतः कवि ने परोक्षरीति से अपने नाम का ऐसा उल्लेख किया होगा।

अनन्तहंसकृत 'दृष्टान्तरत्नाकर' नाम की एक हस्तलिखित प्रति की प्रशस्ति में अनन्तहंस ने अपने गुरु का नाम जिणमाणिक्य कहा है। 'कुम्मापुत्तचरिअं' तथा 'दृष्टान्तरत्नाकर' इन दोनों कृतियों में साम्य दिखता है; इसलिये अनन्तहंस उक्त दोनों कृतियों का कर्त्ता होगा, इसे पुष्टि मिलती है।

अनन्तहंस के नाम पर 'बारहव्रतसज्झाय' और 'इलाप्राकारचैत्यपरिपाटी' ये दो गुजराती कृतियाँ मिलती हैं। लेकिन एक दो प्रति की प्रशस्ति में दी हुई बात पर कितना विश्वास रखना चाहिये, यह प्रश्न है। क्योंकि श्री जिनमाणिक्य के रजसमान (अनंतहंस) शिष्य ने इस प्रकरण की रचना की, ऐसा अर्थ करना पड़ेगा। परन्तु एक हस्तलिखित प्रति की प्रशस्ति से ऐसा मालुम होता है कि तपागच्छ के श्रीहेमविमलसूरि के शिष्य श्रीजिनमाणिक्य ने 'कुम्मापुत्तचरिअं' की रचना की और महोपाध्याय श्रीमुक्तिसौभाग्यगणि-शिष्य मुनि कल्याणसौभाग्य ने उसको लिपिबद्ध किया—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति श्रीमत्तपाचन्द्रगच्छेशआणहविमलसूरिपट्टालंकारश्रीहेमविमल-सूरिशिष्यश्रीजिनमाणिक्येन कूर्मापुत्रचरित्रं विरचितं महोपाध्याय-श्रीमुक्तिसौभाग्यगणिशिष्यमुनिकल्याणसौभाग्येन लिखितं।

जिनमाणिक्य के नाम पर हमें गुजराती भाषा का 'कूर्मापुत्ररास' नाम का काव्य मिलता है। डॉ. के.व्ही. अभ्यंकर ने 'कुम्मापुत्तचरिअं' तथा 'कूर्मापुत्ररास' का कर्त्ता वही जिणमाणिक्य है, ऐसा प्रतिपादन किया है। लेकिन 'कूर्मापुत्ररास' का कर्त्ता जिनमाणिक्य खरतरगच्छ में से ६०वाँ पट्टधर था। उसका जन्म संवत् १५४६ (ई. १४६२) में हो गया और संवत् १५६० में उसने दीक्षा ली थी। इसलिए 'कुम्मापुत्तचरिअं' का कर्त्ता तपागच्छीय जिणमाणिक्य 'कूर्मापुत्ररास' का कर्त्ता जिनमाणिक्य से पूर्णतया भिन्न है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

यदि उक्त बातों पर विचार किया जाए तो 'कुम्मापुत्तचरिअं' का कर्त्ता जिणमाणिक्य है या अनंतहंस है, यह निश्चित विधान किया नहीं जा सकता। इन दोनों में से कोई एक इस काव्य का कर्त्ता हो, ऐसा अनुमान करना पड़ेगा। किन्तु कुछ प्रतियों में अनन्तहंस का पृथक् उल्लेख प्राप्त होने से उसे ही इस ग्रंथ का कर्त्ता मानना उचित है।

समय—'कुम्मापुत्तचरिअं' की प्राचीनतम प्रति ई.स. १५३८ की है, तो 'दृष्टान्तरत्नाकर' ग्रंथ ई.स. १५१३ में लिखा गया है, ऐसी विवेचना मिलती है। तपागच्छ के पट्टावलि से श्रीहेमविमलसूरि का समय ई.स. १४६२ से ई. १५१२ तक प्राप्त होता है। जिणमाणिक्य या अनंतहंस इनमें से कोई भी कर्त्ता माना जाए, तो उसका समय ई.स. १५३८ के आसपास अर्थात् सोलहवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

स्थल—'कुम्मापुत्तचरिअं' की हस्तप्रतियाँ उत्तर गुजरात में मिली हैं। उस समय हस्तलिखित प्रति एक स्थान से दूसरी जगह ले जाना अशक्य था। इससे कहा जा सकता है कि 'कुम्मापुत्तचरिअं' के कर्त्ता का निवास स्थान उत्तर गुजरात में ही होगा। तपागच्छ का संबंध भी गुजरात-मारवाड़ प्रान्त से ही दिखता है। इसलिये तपागच्छ के आचार्यश्री के शिष्य जिनमाणिक्य या प्रशिष्य अनंतहंस का संबंध भी इस प्रान्त से होना स्वाभाविक है। जिनमाणिक्य को अहमदाबाद में तथा अनंतहंस को ईडर में वाचकपद मिला, ऐसा उल्लेख मिलता है। इसलिए 'कुम्मापुत्तचरिअं' के कर्त्ता का विहार अहमदाबाद और उसके आसपास का प्रदेश साबरकांठा, महेसाणा, बनारसकांठा आदि जिलों में हुआ होगा।

संक्षेप में कहा जाये तो 'कुम्मापुत्तचरिअं' का कर्त्ता जिनमाणिक्य या अनंतहंस तपागच्छ के हेमविमलसूरि का शिष्य या प्रशिष्य था। वह ई.स. १६वीं सदी के प्रारम्भ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल में अहमदाबाद के परिसर (आसपास) में हुआ होगा। वैसे ही वह जिनागम में पारंगत था और उसका संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं पर गहरा प्रभुत्व था, ऐसा मालुम होता है।

'कुम्मापुत्तचरिअं' का सारांश

दान, तप, शील और भाव इन चतुर्विध धर्मों में भाव-चित्तशुद्धि का महत्त्व सिद्ध करने के लिए अनंतहंस कवि ने पुराणकाव्यशैली में 'कुम्मापुत्तचरिअं' नाम के लघु, लेकिन परिणामकारक कथानक को महाराष्ट्री प्राकृत भाषा में लिखा है। इस शुद्ध भाव से ही घर में रहकर भी कूर्मापुत्र को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इस विषय पर यह काव्यमय कथा है।

मङ्गलाचरण

मङ्गलाचरण के रूप में सुर और असुरों के इंद्रों द्वारा वंदनीय भगवन् महावीर प्रभु के चरणकमलों को वन्दन कर कवि संक्षेप से कूर्मापुत्र की जीवनकथा का प्रारम्भ करता है। (१)

प्रारम्भिकी

एक समय भगवान् महावीर विहार करते-करते राजगृह के गुणशिल्पक उद्यान में पधारे। उस समय देवों ने समवसरणसभा की रचना की। वहाँ भगवन् सभा में आये भव्यजीवों को दान, तप, शील और भाव इन चार प्रकार के धर्मों का हितोपदेश देने लगे। उनमें भाव-चित्तशुद्धि महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि भाव ही संसारसागर पार कराने की नौका, स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग तथा मनोवांछित वस्तु की प्राप्ति के लिए चिंतामणि है। इसलिए कूर्मापुत्र को इस शुद्ध भाव के प्रभाव से घर में रहकर भी केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। सच कहा जाये तो भावशुद्धि के लिए गृहस्थ और मुनि यह भेद ही नहीं रहता। यह सुनकर इन्द्रभूतिगौतमगणधर ने जिज्ञासा से भगवन् को कूर्मापुत्र के बारे में पूछा। तब भगवन् कूर्मापुत्र की अद्भुत जीवनकथा कहने लगे। (२-८)

कूर्मापुत्र का पूर्व जीवन

जंबूद्वीप के भारतवर्ष में दुर्गमपुर नाम का समृद्ध और सुविख्यात नगर था। वहाँ महाप्रतापी द्रौण राजा अपनी द्रुमा पट्टरानी के साथ सुख से राज्य करता था। उनका दुर्लभ नाम का कामदेवसदृश सुन्दर और गुणशील पुत्र था। वह जवानी और राजमद से सेवक आदि को गेन्द के समान ऊपर फेंकने में आनन्द मानता था। (९-१३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक समय वहाँ के दुर्गिलउद्यान में सुलोचन नाम के केवलिमुनि पधारे। वहाँ बहुशालवटवृक्ष के नीचे पाताल में अपने सुवर्णमय भव्य प्रासाद में भद्रमुखी नाम की यक्षिणी रहती थी। वह पूर्वजन्म में मानवती नाम की सुवेलवेलंधरदेव की प्राणप्रिया थी। केवलिमुनि के पास आकर उसने उनको वन्दन किया और अपने पूर्वजन्म के पति के बारे में पूछा। वहाँ के द्रौणराजा का पुत्र दुर्लभकुमार ही अपना पूर्वजन्म का पति है, यह केवलिमुनि से जानकर वह हर्षित हो गई। मानवती का रूप लेकर वह कुमार के पास आई। उसने सेवक आदि को ऊपर फेंकने की क्षुद्रक्रीड़ा के बारे में कुमार को डांटा, अन्य सुन्दर बातों के लिए उसे आकर्षित किया और अपने पीछे आने को कहा। कौतूहलवश वह भी उसके पीछे दौड़ा और पाताल में उसके स्वर्णमय प्रासाद में आया। 'यह इन्द्रजाल है या स्वप्न है?' इस विचार से वह विस्मित होकर देखने लगा। उसके मन की शंका दूर करने के लिए उसने कहा कि कितने वर्षों के बाद उसने उसे देखा है। दृष्टिभेट की मनीषा पूर्ण होने से उसे अत्यानंद हुआ और वह उसे वहाँ लेकर आई। भद्रमुखी के प्रेमपूर्ण शब्द सुनते-सुनते तथा मोहक नेत्रों से देखते-देखते उसे जातिस्मरण हो गया। उसने ही कुमार के शरीर से अशुभ पुद्गल निकाल कर वहाँ शुभ पुद्गल डाले। वे दोनों वहाँ सुख से कालक्रमणा करने लगे। (१४-३६)

पुत्रवियोग से दुःखी हुए उसके माता-पिता ने दुर्लभकुमार की बहुत खोज की, लेकिन उसका पता नहीं लगा। देवों द्वारा अपहृत की गई वस्तु कभी मानवों को मिल सकेगी क्या? उन्होंने सुलोचन केवलिमुनि को पुत्र के बारे में पूछा। केवलिमुनि ने कहा कि भद्रमुखी यक्षिणी पूर्वजन्म के प्रेम से दुर्लभकुमार को पाताल में ले गई और कुमार भी प्रेमातुर होकर उस दिव्य प्रासाद में उसके साथ वैषयिक सुख भोगते हुए रहने लगा है। जब वे विहार करते-करते फिर वहाँ आयेंगे तब कुमार की भेंट हो जाएगी—ऐसे भी कहा। यह सुनकर कुमार के माता-पिता को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने छोटे पुत्र को गद्दी पर बैठाकर केवलिमुनि के चरणों में दीक्षा ली। मुनि और आर्यिका का कठोर आचरण करते वे दोनों केवलिमुनि के साथ विहार करते-करते फिर एक बार वहाँ के दुर्गिलउद्यान में ही आये। (३७-४८)

अवधिज्ञान से 'कुमार अल्पायुषी है' यह जानकर भद्रमुखी केवलि के पास आई और उन्हें वन्दन करके पूछने लगी—कुमार की आयु बढ़ेगी या नहीं? उन्होंने वस्तु का स्वरूप समझाया और बताया कि कोई भी प्रतापी बलदेव, वासुदेव, देव तथा तीर्थंकर आदि भी आयुष्य के टूटे हुए टुकड़े जोड़ नहीं सकते। तब कुमार का वियोग हो जाएगा, इस कल्पना से ही वह यक्षिणी दुःखी हो गई। कुमार ने आग्रह पूर्वक उससे उदासी का कारण पूछा। उसने कुमार के अल्पायुष्य के बारे में कहा। शेष आयुष्य में आत्मकल्याण करना चाहिए, कुमार की यह इच्छा जानकर यक्षिणी कुमार को केवलि के पास ले आयी। (४९-६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमार को देखकर पुत्रप्रेम से उसके माता-पिता रोने लगे। 'द्रौणराजा और द्रुमारानी ने पुत्रवियोग के दुःख से कैसी दीक्षा ली थी? यह बात केवलिमुनि ने उसे बताया। माता-पिता के दर्शन से दुर्लभकुमार आनन्दित होकर और उनको कंठालिंगन दे कर रोने लगा। यक्षिणी ने आंचल से उसके आँसू पोंछ कर उसको सान्त्वन किया। सच ही मोह का प्रभाव विचित्र है। (६४-७१)

रत्नव्यापारी का दृष्टान्त

योग्य समय देखकर केवलिमुनि धर्मोपदेश करने लगे। महत्प्रयास से प्राप्त किया हुआ चिंतामणि प्रमाद से खो देने वाले रत्न व्यापारी की तरह हम दुर्लभ मानवजन्म प्राप्त करके धर्माचरण में प्रमाद कर इसे व्यर्थ खो न देवें।

एक नगर में एक कलाकुशल रत्नपारखी व्यापारी रहता था। सब रत्नों में श्रेष्ठ चिंतामणि प्राप्त करने की लालसा से उसने अनेक प्रयत्न किये, जगह-जगह खान खोदे। उसके सब प्रयत्न व्यर्थ हो गए। एक समय एक गृहस्थ के कहने से वह जहाज में बैठकर रत्नद्वीप में गया। वहाँ इक्कीस अनशन से उसने आशापूरीदेवी की आराधना की। देवी प्रसन्न हो गयी। उसने वर के रूप में चिंतामणि की माँग की। देव भी अपने-अपने कर्मों के अनुसार कुछ देते हैं। इसलिए देवी ने कहा कि चिंतामणि प्राप्त करने लायक उसका अच्छा कर्म नहीं। यदि उसका अच्छा कर्म था तो वह रत्नद्वीप में आकर देवी की क्यों आराधना करता? 'फिर जो होना है होने दो' ऐसे कह कर उसने आग्रह से चिंतामणि देने की याचना की। देवी ने उसे चिंतामणि दिया। आनन्दित होकर वह जहाज में बैठा और वापस जाने लगा।

जब जहाज सागर के बीच में आया, तब पूर्व दिशा में पूर्णिमा का चन्द्रोदय हुआ। चन्द्रमा का या चिन्तामणि का तेज (प्रकाश) ज्यादा है, यह देखने के लिए उसने चिंतामणि करतल में लिया और एक बार चिन्तामणि को और फिर एक बार चन्द्रमा की ओर बार-बार देखने लगा। लेकिन उसके प्रमाद से वह चिंतामणि करतल से अथाह सागर में गिर गया। उसने जहाज रोका और खूब खोज की, लेकिन कुछ भी उपयोग नहीं हुआ। महत्प्रयास से प्राप्त किए चिंतामणि की तरह दुर्लभ मानव-जन्म प्राप्त कर वह प्रमाद से व्यर्थ गवा देने वाला मूर्ख है। लेकिन मानव-जन्म में जिनधर्म को स्वीकार कर तदनुसार आचरण करने वाला धन्य है। उसका ही जन्म सफल होता है। (७२-९१)

महाशुक्रस्वर्ग में देव

केवलिमुनि का यह धर्मोपदेश सुनकर यक्षिणी ने सम्यक्त्व धारण किया। दुर्लभकुमार मुनि हो गया। उसने १४ पूर्वों का अध्ययन किया। उग्र तपश्चरण करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता-पिता के साथ वह महाशुक्रस्वर्ग के मंदिरविमान में देव हो गया। उन तीनों जीवों के द्वारा चारित्र्यपालन का यह फल था। यक्षिणी भी मर कर वैशाली के राजा भ्रमर की रूपगुणशीलसंपन्न कमलावती नाम की रानी हो गयी। राजा और रानी ने जिनधर्म को स्वीकार किया। अंत में शुभध्यानपूर्वक मरकर वे दोनों ही वहाँ महाशुक्रस्वर्ग में देव हो गये। (९२-९६)

कूर्मापुत्र का जीवन

महाप्रतापी महेन्द्रसिंह राजा धनधान्य से समृद्ध और सुप्रसिद्ध राजगृह में न्याय पूर्वक राज्य करता था। उसकी रूपगुणशील सम्पन्न कूर्मा नाम की रानी थी। सुख से राज्योपभोग भोगते किसी दिन रानी ने स्वप्न में एक भव्य देवप्रासाद देखा। तब राजा ने स्वप्न का फल कहा कि रानी विश्व का नेत्र ऐसे गुणशील युक्त पुत्र को जन्म देगी। दुर्लभकुमार का जीव, जो महाशुक्रस्वर्ग में देव था, वह उसके उदर में अवतरित हुआ। इस गर्भधारण से रानी तेजस्वी दिखने लगी। (९७-१०८)

कूर्मारानी को धर्मश्रवण करने का दोहद हो गया। राजा द्वारा निमन्त्रित किए षड्दर्शन पारंगत विद्वान् आचार्यों ने अपना-अपना हिंसायुक्त धर्म कहा। लेकिन जिनधर्मरत रानी को वह धर्मोपदेश अच्छा नहीं लगा। तब राजा के निमन्त्रण से जैनाचार्य ने छः प्रकार के जीवों पर दया दिखाने वाला अहिंसा धर्म कहा। वह सुनकर रानी अत्यन्त हर्षित हो गई। योग्य समय में शुभलग्न तथा शुभ दिन में उसे रूपगुणसंपन्न पुत्र हो गया। बड़े ऐश्वर्य से जन्मोत्सव मनाया। धर्मश्रवण करने का दोहद होने से पुत्र का 'धर्मदेव' नाम रखा। लेकिन उसका बोलचाल का कूर्मापुत्र यह नाम ही रूढ़ हो गया। उसे पाँच धाय आदि सब का प्यार था। उसने अपनी चाणाक्ष बुद्धि से अल्प समय में ७२ कलाएँ आत्मसात कर लीं। लेकिन पूर्वजन्म में सेवक आदि को ऊपर फेंकने के अशुभ कर्म से वह सिर्फ दो हाथ प्रमाण का हो गया। (१०९-१२८)

जवानी में सब उन्मत्त होते हैं, लेकिन पूर्वजन्म में पालन किये चारित्र के प्रभाव से उसका मन सांसारिक सुखोपभोगों से विरक्त बना। एक समय मुनिवर्यों का उपदेश सुनकर उसे जातिस्मरण हो गया। वह क्षपकश्रेणि पर चढ़ने लगा। सब कर्म-बन्धनों का क्षय होते ही कूर्मापुत्र को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। लेकिन अपने विरह से मेरे माता-पिता मर जाएँगे, इस विचार से उनको बोध कराने के लिए वह संसारावस्था में ही रहा। धन्य है वह मातृपितृभक्त कूर्मापुत्र! (१२१-१३९)

द्रव्यपूजा और भावपूजा में भावपूजा शुद्धभाव के कारण श्रेष्ठ है, इसलिए आरसे महल में भरत चक्रवर्ती को, बांबू के ऊपर चढ़े हुए इलापुत्र को और नाटक में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरतेश्वर की भूमिका करते समय आषाढभूति को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। (१४०-१४५)

भगवन् जगदुत्तमतीर्थङ्कर का उपदेश

महाविदेहक्षेत्र के समृद्ध रत्नसंचया नाम की नगरी में महातेजस्वी देवादित्य चक्रवर्ती अपनी ६४ हजार कामिनियों के साथ सुख से राज्योपभोग भोगता था। एक समय विहार करते-करते भगवन् जगदुत्तम तीर्थंकर वहाँ उद्यान में पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की। देवादित्य उनके दर्शन के लिए सपरिवार आया। भगवन् को विधिपूर्वक वन्दना करके वह समवसरणसभा में योग्य स्थान पर बैठा। तीर्थंकर प्रभु भव्य जीवों को आत्म-कल्याण का उपदेश देने लगे।—'मानवजन्म दुर्लभ है। सब इन्द्रियों से परिपूर्ण होकर आर्यक्षेत्र में जन्म मिलना कठिन है। जैनाचार्य का आत्मकल्याण विषयक धर्मोपदेश श्रवण करना, उस पर श्रद्धा रखना और तदनुसार व्रताचार से जीवन व्यतीत करना उससे भी कठिन है। जो इस तरह मुनि-चरित्र अंगिकार कर आत्मकल्याण करते हैं वे मोक्षगामी भव्यजन धन्य हैं।' यह आत्महित परक हितोपदेश सुनकर किसी ने सम्यक्त्व धारण किया, किसी ने मुनिधर्म स्वीकारा तथा किसी ने श्रावकधर्म अंगिकार किया। (१४६-१६४)

कमला, भ्रमर, द्रौण और द्रुमा के जीवों को केवलज्ञान-प्राप्ति

कमला, भ्रमर, द्रौण और द्रुमा के जीव जो महाशुक्रस्वर्ग में देव हो गये थे, वे आयु पूर्ण होने पर वहाँ से च्युत होकर भारतवर्ष में वैताढ्य पर्वत पर विद्याधर हो गये। उन्होंने चारण मुनि के पास मुनिदीक्षा ली। एक समय वे चारों चारणमुनि भगवन् जगदुत्तमप्रभु को वंदन कर समवसरण में बैठे।

देवादित्य चक्रवर्ती द्वारा पूछने पर भगवन् ने कहा कि भारत में चक्रवर्ती नहीं हैं, लेकिन कूर्मापुत्र गृहस्थावस्था में केवलि बन गया है। माता-पिता को बोध कराने के लिए वह घर में ही रहा है।

उन चारों चारणमुनियों ने भगवन् को पूछा कि उन्हें कब केवलज्ञान प्राप्त होगा? तब भगवन् ने कहा कि जब कूर्मापुत्र उनको महाशुक्रस्वर्ग की बात कहेगा तब वे केवलि बनेंगे। शीघ्र ही वे चारों चारणमुनि कूर्मापुत्र के पास आये। कूर्मापुत्र से महाशुक्रस्वर्ग की पूर्वजन्म की बात सुनकर उन्हें जाति-स्मरण हुआ। वे क्षपकश्रेणि पर चढ़ गये और कर्मक्षय करके केवलि बने। फिर वे आकर भगवन् जगदुत्तम के समवसरण में बैठे। उन्हें कूर्मापुत्र से केवलज्ञान प्राप्त हुआ, इसलिए उन्होंने भगवन् को वन्दन नहीं किया। भगवन् ने कहा कि कूर्मापुत्र सातवें दिन में तीसरे प्रहर में मुनिदीक्षा लेगा। फिर भगवन् हितोपदेश करने के लिए पृथ्वी पर इधर-उधर विहार करने लगे। (१६५-१८८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूर्मापुत्र की दीक्षा, उपदेश और मोक्ष-प्राप्ति

तदनंतर योग्य समय में महासत्त्वशील कूर्मापुत्र ने मुनिदीक्षा ली। देवनिर्मित कमलासन पर बैठकर उसने स्वानुभव से उपदेश किया कि जैसे दानों में अभयदान, ज्ञानों में केवलज्ञान, ध्यानों में शुक्लध्यान वैसे ही दान, तप, शील और भाव इन चतुर्विध धर्मों में भाव (चित्तशुद्धि) श्रेष्ठ है। यह सुनकर उसके माता-पिता महेन्द्रराजा और कूर्मारानी ने उसके पास भगवती दीक्षा ग्रहण की। अच्छी तरह से चारित्र्य पालन करके उन्होंने सद्गति प्राप्त की। अन्य भव्यजनों ने भी अपनी शक्ति अनुसार सम्यक्त्व, मुनिधर्म तथा श्रावकधर्म को अंगिकार किया। इसी तरह अनेक भव्यों को बोध कर और दीर्घकाल तक केवलि-पर्याय का पालन कर कूर्मापुत्र ने मोक्षप्राप्ति की।

'कुम्मापुत्तचरिअं' का मूलाधार

'कुम्मापुत्तचरिअं' एक पौराणिक कथा है। यह कथा प्राचीनकाल से दन्तकथा के रूप में प्रचलित थी। जैन आगमग्रंथों में इस कथा का उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन टीकाग्रन्थों में मिलता है। विशेषावश्यकभाष्य (गाथा ३१७० और ३१७१) और औपपातिकसूत्रटीका (पृ. ११४) में इस कथा का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है।

धर्मघोष के 'ऋषिमण्डल' में प्राचीन मुनियों की कथाएँ एक-दो श्लोकों में अतिसंक्षेप में कहीं हैं। 'ऋषिमण्डल' के क्रमांक १२५वें श्लोक में कूर्मापुत्र का इस प्रकार उल्लेख आया है—

दोरयणिपमाणतणू जघण्णओगाहणाइ जो सिद्धो।
तमह तिगुत्तिगुत्तं कुम्मापुत्तं नमंसामि।। (ऋषिमण्डल-१२५)

'जो दो हाथ प्रमाण शरीर का है, जिसका अति छोटा देह है, तो भी त्रिगुप्तियों का पालन करके जो सिद्ध हो गया, उस कूर्मापुत्र को मैं वन्दन करता हूँ।'

ऋषिमण्डल की विविध टीकाओं में शुभवर्धन, हर्षनन्दन आदि ने विस्तार से कूर्मापुत्र का चरित्र दिया है। शेष टीका-ग्रंथों में यह कथा सुप्रसिद्ध होने से कहने की आवश्यकता नहीं, इसलिए विस्तार नहीं किया गया।

धर्मघोष के ऋषिमण्डल पर शुभवर्धन की संस्कृत टीका के दूसरे खण्ड में यह कूर्मापुत्र की कथा ८२ संस्कृत श्लोकों में दी है।

अनंतहंस ने शुभवर्धन का संस्कृत कथाकाव्य सामने रखकर प्राकृत में 'कुम्मापुत्तचरिअं' की रचना की होगी। संस्कृत कथा के समान सिर्फ निर्देश न देकर कवि ने प्राकृत में कुछ प्रसंगों का संक्षेप में, लेकिन काव्यमय वर्णन किया और यह कथा आकर्षक और वाचनीय की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत कथा साहित्य की संक्षिप्त परम्परा एवं कुम्मापुत्तचरिअं

'कुम्मापुत्तचरिअं' का स्वरूप

प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य पर विचार किया जाए तो संस्कृत, पालि और प्राकृत में विपुल कथा-साहित्य है, तथा इस कथा-साहित्य की रचना गद्य और पद्य में की गई है।

कथावाङ्मय के कथा और आख्यायिका ऐसे दो भेद हैं। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' के समान कथा सिर्फ कल्पना पर आधारित होती है; तो उसके 'हर्षचरित' के सदृश आख्यायिका की रचना कल्पना के स्वर उपयोग करके ऐतिहासिक या पौराणिक घटना पर की जाती है। कथा के ये दोनों प्रकार मनोरंजन के लिये किए गये हैं। इसके अनुसार कूर्मापुत्र का चरित्र आख्यायिका है।

प्राकृत के गद्य कथावाङ्मय में संघदासकृत 'वसुदेवहिंडि', हरिभद्रसूरिकृत 'समराइच्चकहा', देवेन्द्रगणिकृत 'रयणचूडरायचरियं', सुमतिकृत 'जिणदत्ताक्खाणं', आदि का समावेश होता है। पद्य कथा वाङ्मय में पादलिप्तसूरिकृत 'तरंगवईकहा', विमसूरिकृत 'पउमचरियं', हरिभद्रसूरिकृत 'धूर्ताख्यान', धनेश्वरसूरिकृत 'सुरसुंदरिचरियं' आदि का समावेश होता है। वैसे ही गद्यपद्यात्मक चम्पूकथा वाङ्मय में उद्योतनसूरिकृत 'कुवलयमाला' का समावेश होता है। 'कुम्मापुत्तचरिअं' में गद्य के दो परिच्छेद तथा एक-दो वाक्य या तं च केरिसं, तथा हि, यदुक्तं, आदि वाक्यांश मिलते हैं, तो भी इसको चम्पू न कहकर पद्यमय कथा ही कहा गया है।

हरिभद्रसूरि ने अपनी 'समराइच्चकहा' में कथा के निम्नलिखित तीन प्रकार कहे हैं—

१. **दिव्यकथा**—देवों की कथाएँ।

२. **मानुषकथा**—मानवों की कथाएँ।

३. **दिव्यमानुषकथा**—देवों और मानवों की कथाएँ।

कवि कोतूहल ने लीलावईकहा में भी इन्हीं तीन प्रकार की कथाओं का उल्लेख किया है।

'कुम्मापुत्तचरिअं' में द्रौणराजा, द्रुमारानी, दुर्लभकुमार तथा महेन्द्रसिंह राजा, कूर्मारानी, कूर्मापुत्र आदि मानव और महाशुक्रस्वर्ग में देव, इन्द्र, भद्रमुखी यक्षिणी, आदि देवी-देवताओं का उल्लेख हुआ है। इसलिए यह दिव्यमानुष कथा है।

फिर भी हरिभद्रसूरि ने विषयगत कथाओं के चार प्रकार कहे हैं—

१. **अर्थकथा**—द्रव्यार्जन सम्बन्ध की कथाएँ।

२. **कामकथा**—वैषयिक सुखोपभोग सम्बन्ध की प्रणयकथाएँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. **धर्मकथा**—संसार से विरक्ति निर्माण कर सम्यक्त्व-प्राप्ति के लिए लिखी गई धार्मिक कथाएँ।

४. **संकीर्णकथा**—धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ सिद्ध करने के लिए लिखी गई संमिश्र कथाएँ।

संसार-जंजाल से विरक्ति निर्माण कर सम्यक्त्व की प्रेरणा जागृत करने वाली यह 'कुम्मापुत्तचरिअं' कथा धर्मकथा है।

उद्योतनसूरि ने अपने 'कुवलयमाला' नामक प्रदीर्घ चम्पू काव्य में कथा के पाँच प्रकार बताए हैं—१. सकलकथा, २. खंडकथा, ३. उल्लापकथा, ४. परिहासकथा और ५. संकीर्णकथा। तथा उन्होंने हरिभद्रसूरि द्वारा बताए गए भेदों में धर्मकथा के निम्नांकित चार भेद भी किए हैं—

१. **आक्षेपिणी**—मनोनुकूल आकर्षक कथाएँ।

२. **विक्षेपिणी**—मनप्रतिकूल उद्वेगजनक कथाएँ।

३. **संवेदजननी**—ज्ञानोत्पत्ति करने वाली कथाएँ।

४. **निर्वेदजननी**—वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथाएँ।

प्रस्तुत कुम्मापुत्तचरिअं कथा निर्वेदजननी है। अतः कहा जा सकता है कि 'कुम्मापुत्तचरिअं' यह प्राकृत की पद्यात्मक कथा आख्यायिका प्रकार की उत्कृष्ट निर्वेदजननी धर्मकथा है।

'कुम्मापुत्तचरिअं' धर्मकथा

प्रस्तुत प्राकृत ग्रन्थ 'सिरिकुम्मापुत्तचरिअं' आख्यानक विभाग में निर्वेदजननी दिव्यमनुष्य जैन धार्मिक कथाकाव्य है। इसमें कूर्मापुत्रचरित्र के आधार से भावशुद्धि का महत्त्व समझाया है। मुक्ति के लिए मुनिदीक्षा की नहीं, लेकिन चित्तशुद्धि की जरूरत है। जिस व्यक्ति का मन शुद्ध है, भावना शुद्ध है; वह गृहस्थ हो या मुनि, वह केवलि हो सकता है। इस दृष्टि से दान, शील, तप और भावना इस चतुर्विध धर्म में भावना सर्वश्रेष्ठ है। शुद्ध भावना संसारसागर पार कराने वाली नौका है, मुक्तिपुरी को पहुँचाने वाला मार्ग है और मनोवांछित वस्तु प्रदान करने वाला चिंतामणि है। इस शुद्ध भावना से ही गृहस्थावस्था में रहते हुए भी कूर्मापुत्र को केवलज्ञान कैसे प्राप्त हुआ, इसका सरस वर्णन इस काव्य में किया है। यहाँ रत्नपारखी व्यापारी का दृष्टान्त दिया है। इसमें दुर्लभ मानवजन्म प्राप्त करके प्रमत्तता से चिंतामणि खो देने वाले व्यापारी के समान मानव भी प्रमत्तता से मनुष्यजन्म व्यर्थ खो देता है, यह सिद्धान्त सिखाया है। इसलिए 'प्रमत्तता का त्याग कर धार्मिक वृत्ति में अप्रमत्त रहो, व्रताचरण करो और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन सार्थक बनाओ' ऐसा उपदेश दिया है तथा शुभाशुभ कर्मों का अच्छा-बुरा फल मिलता है, इसका भी सुन्दर वर्णन किया है। राजमद से सेवक आदि को ऊपर फेंकने के अशुभ कर्म से ही कूर्मापुत्र सिर्फ दो हाथ प्रमाण का हो गया है। इस तरह कूर्मापुत्रचरित्र यह एक सरस प्राकृत धर्मकथा काव्य है।

'कुम्मापुत्तचरिअं' की भाषा

प्रस्तुत 'कुम्मापुत्तचरिअं' प्राकृत का धार्मिक कथा-काव्य है। यह कथा पौराणिक है, तो भी इस काव्य की भाषा प्राचीन नहीं दिखती। इसमें देशी शब्दों का उपयोग नहीं किया गया। लेकिन कुछ स्थानों में शब्द रचना पर संस्कृत का गहरा प्रभाव दिखता है। क्योंकि उस समय विद्वानों की साहित्यिक भाषा संस्कृत थी। अपना कवि अनन्तहंस तो संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में अच्छी तरह से पारंगत था।

देवेन्द्रगणि ने उत्तराध्ययनसूत्र पर 'सुखबोधा' नाम की टीका लिखी है। उसमें से 'अगडदत्तचरियं' के समान महाराष्ट्री प्राकृत भाषा से मिलती-जुलती इस कथाकाव्य की रचना होने से 'कुम्मापुत्तचरिअं' की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है।

श्लोक ७ और श्लोक ३६ के पश्चात् जो गद्यांश आये हैं, वे स्थानाङ्ग आदि सूत्रसाहित्य में से उद्धरण के रूप में अर्धमागधी प्राकृत में हैं तथा उत्तराध्ययनसूत्र और दशवैकालिक सूत्र से उद्धृत श्लोक भी अर्धमागधी प्राकृत में हैं। 'एए केवली भणिया दिट्ठंता सुणेऊण बिसेसं वेरग्गमावन्नो। एत्थंतरे (६२ के पश्चात्), तं च केरिसं (२४ के पश्चात्), इओ य (३७ के पूर्व), इत्थंतरे (१६५ के पूर्व), ऐसे कुछ वाक्य और सूचनायुक्त वाक्यांश भी इस काव्य के बीच-बीच में दिखते हैं।

गाथा क्रमांक ५३, ११४, ११५ और १६२ श्लोक संस्कृत में लिखे हैं और वे सामान्य सुभाषित के रूप में हैं तथा 'चतुर्विधभोगस्वरूपं स्थानांगेऽप्युक्तम्' (३६ के पश्चात्), 'उक्तं च दशवैकालिके' (११८ के पूर्व), 'क्षपकश्रेणिक्रमः पुनरयम्' (१७८ के पूर्व), 'यदुक्तमागमे' उपदेशमालायां (११ के पूर्व), (४२ और १४४ के पूर्व), यदुक्तं (५३ के पूर्व), यतः (१४४ और १६२ के पूर्व), तथा हि (७४, ११७ और १६१ के पूर्व), किं तु (१२८ के पूर्व), इतश्च (६६ के पूर्व), तत्र चावसरे (१२२ के पूर्व) आदि कुछ संस्कृत वाक्य और संस्कृत वाक्यांश भी बीच-बीच में दिखते हैं।

१२२ और १२३ गाथाएँ अपभ्रंश में हैं और उनमें कूर्मापुत्र के जन्मोत्सव का संक्षिप्त सुन्दर वर्णन किया है।

इस कूर्मापुत्रचरित्र धर्मकथाकाव्य का प्रमुख लक्षण है—सरलता। सामान्य वाचक भी यह काव्य शुरू से अन्त तक सहजता से पढ़ सके, ऐसी इस काव्य की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरल रचना है। यहाँ बड़े-बड़े समास, क्लिष्ट रचना और दुर्बोध अलंकारों का उपयोग दिखता ही नहीं। लेकिन इस काव्य में गुणसिलए गुणनिलए (२), भद्दमुही (२०), सुरभिवणे सुरभवणे (३०), सुकयसुकयवसओ (३१), नियसुरभिं, सुरभिं सुरभिं (६८), गुरुयं, गुरुअंतिए (९२), वरनयरं वरनयरंगंतमंदिरं, आदि में भिन्न-भिन्न अर्थों के शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस काव्यशैली का यह अनोखा वैशिष्ट्य है। एक ही शब्द बार-बार नजदीक आने से कर्णमधुर बनता है तथा उनके विभिन्न अर्थ ज्ञात होने से मन प्रसन्न होता है। ६७ और ६८ गाथाओं में सहजसुलभ उपमाओं का उपयोग किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तहंसकृत

सिरिकुम्मापुत्तचरिअं
(श्री कूर्मापुत्र चरित्र)

नमिऊण वद्धमाणं असुरिंदसुरिंदपणयपयकमलं।
कुम्मापुत्तचरित्तं वोच्छामि अहं समासेणं ।। 1।।

अर्थ : असुरों एवं देवों द्वारा चरण–कमलों में प्रणाम किए गए भगवान् वर्द्धमान को नमस्कार करके मैं कूर्मापुत्र के चरित्र को संक्षेप में कहता हूँ।

रायगिहे वरनयरे नयरेहापत्तसयलपुरिसवरे।
गुणसिलए गुणनिलए समोसढो वद्धमाणजिणो।। 2।।

अर्थ : न्याय की रेखा को प्राप्त समस्त श्रेष्ठ पुरुषों से युक्त राजगृह नाम के श्रेष्ठ नगर के गुण नामक यक्ष मंदिर के गुणशिलक नामक उद्यान में भगवान् वर्द्धमान आए।

देवेहि समोसरणं विहिअं बहुपावकम्मओसरणं।
मणिकणयरयणसारप्पायारपहापरिप्फुरिअं।। 3।।

अर्थ : मणि, सोना और रत्नों के सारभूत अनेक प्रकार की प्रभा से स्फुरित/शोभायमान (तथा) बहुत से पाप कर्मों को दूर करने वाले समवसरण की देवताओं द्वारा रचना की गई।

तत्थ निविट्ठो वीरो कणयसरीरो समुद्दगम्भीरो।
दाणाइचउपयारं कहेइ धम्मं परमरम्मं।। 4।।

अर्थ : वहाँ (बगीचे में) स्थित सोने के समान पीले शरीर वाले (तपस्या से तपे हुए शरीर वाले), समुद्र के समान गम्भीर (धर्म की विशेष गम्भीर बातें करने वाले), भगवान् महावीर दान आदि चार प्रकार के महान् और श्रेष्ठ धर्म को कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाणतवसीलभावणभेएहि चउव्विहो हवइ धम्मो।
सव्वेसु तेसु भावो महप्पभावो मुणेयव्वो ।। 5।।

अर्थ : दान, तप, शील (और) भावना के भेद से धर्म चार प्रकार का होता है। उन सभी में भाव धर्म को महान् भावना वाला जानना चाहिए।

भावो भवुदहितरणी भावो सग्गापवग्गपुरसरणी।
भवियाणं मणचिन्तिअअचिंतचिंतामणी भावो।। 6।।

अर्थ : भावधर्म संसार रूपी समुद्र को पार करने में (समर्थ है), भाव धर्म स्वर्ग एवं मोक्ष नगरी का मार्ग है। भव्य संसारी जीवों के लिए भावधर्म मन में चिंतनीय व अचिंतनीय चिंतामणि के (समान है)।

भावेण कुम्मापुत्तो अवगयतत्तो य अगहियचरित्तो।
गिहवासे वि वसंतो संपत्तो केवलं णाणं ।। 7।।

अर्थ : तत्वों को जानने वाला और चारित्र धर्म को धारण न करने वाला (वह) कूर्मापुत्र भावधर्म के द्वारा गृहस्थावस्था में रहते हुए भी केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

इत्थंतरे इन्दभूई नामं अणगारे भगवओ महावीरस्स जिट्ठे अंतेवासी गोयमगुत्ते समचउरंससरीरे वज्जरिसहनारायसंघयणे कणयपुलयनिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे महातवे घोरतवे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्त–विउलतेउलेस्से चउदसपुव्वी चउणाणोवगए पंचहि अणगारसएहि सद्धि संपरिवुडे छट्ठंछट्ठेणं अप्पाणं भावेमाणे उट्ठाए उट्ठेइ। उट्ठित्ता भयवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ। करित्ता वंदइ णमंसइ। वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–भयवं! को णामं कुम्मापुत्तो, कहं वा तेण गिहवासे वसंतेण भावणं अणुत्तरं निव्वाघायं निवारणं कसिणं पडिपुण्णं केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडिअं। तए णं समणं भगवं महावीरं जोयणगामिणीए सुधासमाणीए वाणीए वागरेइ :–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : उस समय गौतम गोत्रीय समचतुरस्त्रसंस्थान वाले वज्रवृषभ–नाराचसंहनन, कमल के समान लालिमा युक्त एवं स्वर्ण की रेखा के समान गौरवर्ण वाले, उग्र तप करने वाले, तप से दैदीप्यमान, महान् एवं घोरतप करने वाले, जीवन में पूर्ण एवं कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, शरीर से विरक्त (अपने शरीर को नहीं संवारने वाले), संक्षिप्त एवं विपुल तेजोलेश्या के धारक, चौदह पूर्वों के ज्ञाता एवं चार प्रकार के ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्यय)से युक्त, पाँच सौ साधुओं से घिरे हुए, बार–बार शास्था उपवास के द्वारा अपनी आत्मा का उन्नयन(विकास) करते हुए भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य अनगार इन्द्रभूति गौतम उठते हैं। उठकर भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा करके झुककर वंदना करते हैं, प्रणाम करते हैं। झुककर वंदना करके एवं प्रणाम करके इस प्रकार कहते हैं :– हे भगवन्! कुम्मापुत्त (कूर्मापुत्र) कौन था? तथा उसने गृहस्थावस्था में रहते हुए भावना का चिन्तन करते हुए किस प्रकार से अनन्त, अनुत्तर, अव्याबाधित, आवरण रहित, परिपूर्ण एवं सकल श्रेष्ठ केवलज्ञान व केवलदर्शन को प्राप्त किया। तब श्रमण भगवान् महावीर ने एक योजन तक सुनाई देने वाली अमृत के समान वाणी में कहा :–

गोयम जं मे पुच्छसि कुम्मापुत्तस्स चरिअमच्छरिअं।
एगग्गमणो होउं समग्गमवि तं निसामेसु ।। 8।।

अर्थ : हे गौतम! कूर्मापुत्र के आश्चर्य युक्त, जिस चरित्र को (तुम) मुझसे पूछते हो, उसके समग्रस्वरूप को एकाग्रचित्त होकर सुनो।

जम्बुद्दीवे दीवे भारहखित्तस्स मज्झयारंमि।
दुग्गमपुराभिहाणं जगप्पहाणं पुरं अत्थि ।। 9।।

अर्थ : भारत क्षेत्र के मध्यभाग में जम्बूद्वीप नामक द्वीप में जग में प्रधान दुर्गमपुर नाम का नगर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ य दोणनरिंदो पयावलच्छीइ निज्जिअदिणिंदो।
णिच्चं अरियणवज्जं पालइ निक्कंटयं रज्जं ।। 10।।

अर्थ : और वहाँ पर (अपने) प्रताप की कान्ति से सूर्य को जीतता हुआ द्रौण राजा शत्रुओं से रहित निश्कंटक राज्य का हमेशा पालन करता था।

तस्स नरिन्दस्स दुमा नामेणं पट्टराणिआ अत्थि।
संकरदेवस्स उमा रमा जहा वासुदेवस्स ।। 11।।

अर्थ : शंकर देव की उमा/पार्वती (और) वासुदेव (विष्णु) की रमा (लक्ष्मी) के समान उस राजा की द्रुमा नामकी पटरानी थी।

दुल्लभणामकुमारो सुकुमारो रम्मरूवजियमारो।
तेसिं सुओत्थि गुणमणिभंडारो बहुजणाधारो।। 12।।

अर्थ : अत्यंत सुकुमार, रूप में सुन्दर कामदेव को जीतने वाला, गुण रूपी मणियों का भण्डार (और) बहुत से लोगों का आधार दुर्लभ नामका राजकुमार उनका पुत्र था।

सो कुमरो नियजुव्वणराजमएणं परे बहुकुमारे।
कंदुकमिव गयणतले उच्छालिंतो सया रमई।। 13।।

अर्थ : अपने यौवन के (तथा) राजमद के वशीभूत हो वह राजकुमार बहुत से कुमारों (बच्चों) को गेंद की तरह आकाश की ओर उछालता हुआ सदा खेलता था।

अण्णदिणे तस्स पुरस्सुज्जाणे दुग्गिलाभिहाणम्मि।
सुगुरुसुलोयणणामा समोसढो केवली एगो।। 14।।

अर्थ : अन्य किसी दिन दुर्गिल नाम के उस नगर के उद्यान में विद्वान् सुलोचन नाम के एक केवली (मुनि) आये।

तत्थुज्जाणे जक्खिणी भद्दमुही नाम निवसए निच्चं।
बहुसालक्खवडद्दुमअहिठिअभवणम्मि कयवासा ।। 15।।

अर्थ : उसी उद्यान में हमेशा निवास करने वाली भद्रमुखी नाम की यक्षिणी बहुशाल नामक वटवृक्ष के नीचे वाले भवन में अपना आवास किए हुए थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलकमलाकलियं संसयहरणं सुलोअणं सुगुरुं।
पणमिय भत्तिभरेणं पुच्छइ सा जक्खिणी एवं ।। 16।।

अर्थ : केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी से सुशोभित, संशय को हरण करने वाले, सुलोचन नाम के गुरु को भक्ति पूर्वक प्रणाम करके वह यक्षिणी इस प्रकार पूछती है –

भयवं पुव्वभवे हं माणवई नाम माणवी आसी।
पाणपिया परिभुग्गा सुवेलवेलंधरसुरस्स ।। 17।।

अर्थ : हे भगवान्! मैं पूर्वभव में मानवती नामकी मानवी थी। (भोगों को) पुनः–पुनः भोगते हुए सुवेलवेलंधर देव की पत्नी हुई थी।

आउखए इत्थ वणे भद्दमुही नाम जक्खिणी जाया।
भत्ता पुण मम कं गइमुववन्नो णाह आइससु ।। 18।।

अर्थ : आयु के पूर्ण होने पर (मैं) इस वन में भद्रमुखी नामकी यक्षिणी हुई थी। किन्तु मेरा पति किस गति में उत्पन्न हुआ है ? हे नाथ! आदेश करें (बताऐं)।

तओ सुलोयणो नाम केवली महुरवाणीए भणइ :–
भद्दे निसुणसु नयरे इत्थेव द्दोणनरवइस्स सुओ।
उप्पन्नो तुज्झ पिओ सुदुल्लहो दुल्लहो नाम ।। 19।।

तब सुलोचन नामके केवली मधुर वचनों द्वारा कहते हैं :–

अर्थ : हे भद्रे! सुनो, तुम्हारा वह प्रिय पति इसी नगर में द्रौणराजा का पुत्र अत्यन्त दुर्लभ "दुर्लभकुमार" नामक (के रूप में) उत्पन्न हुआ है।

तं निसुणिअ भद्दमुही नाम जक्खिणी हिट्ठा।
माणवईरूवधरा कुमरसमीवम्मि संपत्ता ।। 20।।

अर्थ : उसे सुनकर हर्षित (वह) भद्रमुखी नाम की यक्षिणी मानवती का रूप धारण करके कुमार के समीप पहुँची।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठूण तं कुमारं बहुकुमरुच्छालणिक्कतल्लिच्छं।
सा जंपइ हसिऊणं किमिणेणं रंकरमणेणं ।। 21।।

अर्थ : बहुत से बालकों को उछालने में एकाग्रचित्त (एवं) तल्लीन उस कुमार को देखकर (और) हँसकर वह यक्षिणी कहती है (कि) इन गरीब/भोले बच्चों से क्यों मनोरंजन करते हो?

जइ ताव तुज्झ चितं विचित्तचित्तम्मि चंचलं होइ।
ता मज्झं अणुधावसु वयणमिणं सुणिअ सो कुमरो।। 22।।

अर्थ : तब यदि तुम्हारा चित्त विचित्र प्रकार के आश्चर्य में चंचल होता है, तो मेरे पीछे–पीछे आओ। इस वचन को सुनकर वह राजकुमार .....।

तं कण्णं अणुधावइ तव्वअणकुऊहलाकुलिअचित्तो।
तप्पुरओ धावन्ती सा वि हु तं निअवणं नेइ ।। 23।।

अर्थ : उसके वचनों को (सुनकर) कौतूहल युक्त चित्तवाला (वह कुमार) उस कन्या के पीछे–पीछे जाता है। वह यक्षिणी भी वास्तव में शीघ्र ही उसे अपने उद्यान (भवन) को ले जाती है।

बहुसालवडस्स अहेपहेण पायालमज्झमाणीओ।
सो पासइ कणगमयं सुरभवणमईव रमणिज्जं।। 24।।

अर्थ : वह कुमार पाताल के मध्य में स्थित बहुशाल नामक वट वृक्ष के नीचे बने हुए सोने से युक्त देवताओं के भवन से अत्यधिक सुन्दर (उसके भवन को) देखता है।

तं च केरिसं –
रयणमयखंभपंतीकंतीभरभरिअभिंतरपएसं।
मणिमयतोरणधोरणितरुणपहाकिरणकब्बुरिअं ।। 25।।

वह कैसा था ?

अर्थ : रत्नमय खम्भों की पंक्तियों की कान्ति के तेज से चमकित अन्दर के प्रदेश वाला, मणियों से बने हुए दरवाजों के तोरण वाला, तेज प्रकाश की किरण से चितकबरा (विभिन्न रंगों को प्रदर्शित करने वाला था)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणि मयखम्भअहिट्ठिअपुत्तलिआकेलिखोभिअजणोहं।
बहुभत्तिचित्तचित्तिअगववक्खसंदोहकयसोहं।। 26।।

अर्थ : मणि से युक्त खम्भे के नीचे बनी हुई पुत्तलिका की क्रीड़ाओं से लोगों में क्षोभ (ईर्ष्या) को उत्पन्न करने वाले (तथा) दीवालों पर अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित खिड़कियों के समूह से की गई शोभा वाला (वह भवन था)।

एयमवलोइऊणं सुरभवणं भुवणचित्तचुज्जकरं।
अइविम्हयमावन्नो कुमरो इअ चिंतिउं लग्गो।। 27।।

अर्थ : इस तरह के संसार के (लोगों के) चित्त (हृदय) को आश्चर्य युक्त (एवं) अत्यंत विस्मय युक्त करने वाले उस देवभवन को देखकर राजकुमार इस तरह विचार करने में लग गया।

किं इंदजालमेअं एअं सुमिणम्मि दीसए अहवा।
अहयं नियनयराओ इह भवणे केण आणीओ ।। 28।।

अर्थ : क्या यह इन्द्रजाल है अथवा यह (मैं) स्वप्न में देखता हूँ अथवा (मुझे) अपने नगर से इस भवन में किसके द्वारा लाया गया है।

इअ संदेहाकुलिअं कुमरं विनिवेसिऊण पल्लंके।
विन्नवइ वंतरवहू सामिअ वयणं निसामेसु।। 29।।

अर्थ: इस प्रकार संदेह से व्याकुल कुमार को पलंग पर बैठाकर व्यन्तर–वधू (यक्षिणी) निवेदन करती है– हे स्वामी! (मेरे) वचनों को सुनो।

अज्ज मए अंजुमइ चिरेण कालेण नाह दिट्ठो सि।
सुरभिवणे सुरभवणे निअकज्जे आणिओ सि तुमं।। 30।।

अर्थ : आज मैंने बहुत समय बाद अपने ऋजुमति आर्य (पति) को देखा है। (इसलिए मैं) अपने कार्य से तुम्हें सुगन्धित वन में (बने) इस देवभवन में लायी हूँ।

अज्जं चिअ मज्झ मणोमणोरहो कप्पपायवो फलिओ।
जं सुकयसुकयवसओ अज्ज तुमं मज्झ मिलिओसि।। 31।।

अर्थ : आज ही मेरे मन का मनोरथ कल्पवृक्ष फलदायी हुआ है, जिससे अच्छी तरह किए गए पुण्य के वश से आर्य तुम मुझे मिले हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इअ वयणं सोऊणं वयणं दट्ठूण सुनयणं तीसे।
पुव्वभवस्स सिणेहो तस्स मणम्मि समुल्लसिओ।। 32।।

अर्थ : इस प्रकार के वचन को सुनकर (और) उसके सुन्दर नेत्रों वाले मुख को देखकर उस राजकुमार के मन में पूर्वभव का स्नेह उत्पन्न (उल्लसित) हो गया।

कत्थ वि एसा दिट्ठा पुव्वभवे परिचिआ य एयस्स।
इय ऊहापोहवसा जाईसरणं समुप्पण्णं।। 33।।

अर्थ : "कहीं पर भी इसे देखा है अथवा पूर्वभव में इसका परिचय था' इस प्रकार के ऊहापोह (कुछ निश्चित निर्णय न ले पाने की स्थिति) के वश से (राजकुमार को) जाति–स्मरण उत्पन्न हो गया।

जाइसरणेण तेणं नाऊणं पुव्वजम्मवुत्तंतो।
कहिओ कुमरेणं निअपियाइ पुरओ समग्गो वि।। 34।।

अर्थ : जाति–स्मरण से जानकर उस राजकुमार के द्वारा अपनी पिया (यक्षिणी) के सामने समस्त पूर्वजन्म का वृत्तान्त कहा गया।

तत्तो नियसत्तीए असुभाणं पुग्गलाण अवहरणं।
सुभपुग्गलपक्खेवं करिअ सुरी तस्सरीरम्मि ।। 35।।

अर्थ : तब अपनी शक्ति से (यक्षिणी ने) अशुभ पुद्गलों (पदार्थों) का अपहरण करके उसके शरीर में शुभ पुद्गलों (पदार्थों) को प्रेक्षित (आरोपित) करके देव सुख योग्य (भोगने योग्य) बनाया।

पुव्वभवंतरभज्जा लज्जाइ विमुत्तु भुंजए भोगे।
एवं विसयसुहाइं दुन्नि वि विलसन्ति तत्थ ठिया।। 36।।

अर्थ : पूर्वभव की पत्नी (के रूप में) लज्जा के कारण त्यागे हुए भोगों को भोगते हैं। इस तरह वहाँ पर रहते हुए दोनों ही विषयसुखों को भोगते हैं (प्राप्त करते हैं)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"चतुर्विधभोगस्वरूपं स्थानाङ्गेप्युक्तम्– चऊहिं ठाणेहि देवाणं संवासे पण्णत्ते, तं जहा –
देवे णामं एगे छवीए सद्धिं संवासमागच्छिज्जा,
देवे णामं एगे छवीए सद्धिं संवासमागच्छिज्जा,
छवी णामं ऐगे देवीए सद्धिं संवासमागच्छिज्जा,
छवी णामं ऐगे देवीए सद्धिंसंवासमागच्छिज्जा"
इओ अ–

अर्थ : भोग के चार प्रकार के स्वरूप को बताते हुए स्थानाङ्गसूत्र में ठीक ही कहा गया है:– चतुर्थ स्थान में देवताओं के संवास का प्रज्ञापन (व्याख्यान) किया गया है। जैसे:–
1. कोई देव देवियों के साथ संवास करता है।
2. कोई देव छवी (स्त्री) के साथ संवास करता है।
3. कोई पुरुष (छवी) देवियों के साथ संवास करता है।
4. कोई पुरुष (छवी) स्त्री (छवी) के साथ संवास करता है।

अह तस्सम्मापियरो पुत्तविओगेण दुक्खिआ निच्चं।
सव्वत्थ वि सोहन्ति अ लहन्ति न हि सुद्धिमत्तं पि।। 37।।

अर्थ : इसके बाद पुत्र के वियोग से दुःखित उस (दुर्लभकुमार) के माता–पिता हमेशा सभी जगह पर उसे खोजते हैं, (किन्तु) उसका पता (खोज) प्राप्त नहीं होता है।

देवेहिं अवहरिअं नरेहि पाविज्जए कहं वत्थुं।
जेण नराण सुराणं सत्तीए अंतरं गरुअं ।। 38।।

अर्थ : देवताओं के द्वारा हरण की गई वस्तु मनुष्यों द्वारा कैसे प्राप्त की जा सकती है ? (अर्थात् नहीं की जा सकती), क्योंकि मनुष्यों की और देवताओं की शक्ति में बहुत अधिक अन्तर (होता है)।

अह तेहि दुक्खिएहिं अम्मापियरेहि केवली पुट्ठो।
भयवं कहेह अम्हं सो पुत्तो अत्थि कत्थ गओ ।। 39।।

अर्थ : इसके बाद दुःखी मन वाले उन माता–पिता के द्वारा मुनि को पूछा गया– "हे भगवन्! कहिए, हमारा वह पुत्र (दुर्लभकुमार) कहाँ चला गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो केवली पयंपइ सुणेह सवणेहि सावहाणमणा।
तुम्हाणं सो पुत्तो अवहरिओ वंतरीए अ ।। 40।।

अर्थ : तब केवली (मुनि) कहते हैं – सचेत (सावधान) मन पूर्वक अपने कानों से सुनो। तुम्हारा वह पुत्र (दुर्लभकुमार) व्यंतर देवी (यक्षिणी) द्वारा हरण कर लिया गया है।

तो केवलिवयणेणं अईव अच्छरिअविम्हिआ जाया।
साहन्ति कहं देवा अपवित्तनरं अवहरन्ति।।41।।

अर्थ : केवली के वचनों से उनको (कुमार के माता–पिता को) अत्यधिक आश्चर्य एवं विस्मय उत्पन्न हो गया। (वे) कहते हैं– अपवित्र मनुष्य को देवता आदि कैसे हर लेते हैं ?

यदुक्तमागमे –
चत्तारि–पंच–जोयणसयाइं गंधो अ मणुयलोगस्स।
उड्ढं वच्चइ जेणं न हु देवा तेण आयन्ति ।। 42।।

यह आगम में कहा गया है–

अर्थ : मनुष्यलोक की गन्ध चार–पाँच सौ योजन ऊपर (तक) जाती है, जिससे वे देवता आदि निश्चय ही (यहाँ) नहीं आते हैं।

पंचसु जिणकल्लाणेसु चेव महरिसितवाणुभावाओ।
जम्मंतरनेहेण य आगच्छन्ति हु सुरा इह यं।। 43।।

अर्थ : इस तरह जिनेन्द्र भगवान् के पाँच कल्याणकों में और ऋषियों के महान् (कठोर) तप के भाव (प्रभाव) से तथा पूर्व जन्म के स्नेह के कारण निश्चय ही देवता आदि संसार में आते हैं।

तउ केवलिणा कहिअं तीसे जम्मंतरसिणेहाइ।
ते बिंति तओ सामिय अइबलिओ कम्मपरिणामो।। 44।।

अर्थ : तब उन्हें (माता–पिता को) केवली के द्वारा कुमार के पूर्वजन्म के स्नेह आदि को (तथा) पराक्रम युक्त (उसके) कर्म के परिणाम/फल को हे स्वामी! कहा गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयवं कया वि होही अम्हाण कुमारसंगमो कह वि।
तेणुत्तं होही पुण जयेह वयमागमिस्सामो।। 45।।

अर्थ : हे भगवन्! कभी भी, कैसे भी हमारा कुमार से मिलन होगा ? (तब) उन केवली ने कहा– 'होगा' जब यहाँ हम सब पुनः आएँगे।

इअ संबंधं सुणिउं संविग्गा कुमरमायपियरो य ।
लहुपुत्तं ठविअ रज्जे तयंतिए चरणमावन्ना ।। 46।।

अर्थ : इस प्रकार के सम्बन्ध को सुनकर कुमार के माता–पिता मुक्ति की इच्छा करने लगे। और छोटे पुत्र को राज्य पर बैठाकर उसी समय (उन केवली के) पास चरणों के आश्रित हो गए।

दुक्करतवचरणपरा परायणा दोसवज्जियाहारे ।
निस्संगरंगचित्ता तिगुत्तिगुत्ता य विहरन्ति ।। 47।।

अर्थ : अत्यंत दुष्कर तप को ध्याने (तपने) में तल्लीन, दोष रहित भोजन को (लेते हुए), राग से रहित चित्त वाले और मन, वचन, काय रूप तीन गुप्तियों से रक्षित/युक्त (वे दीक्षित माता–पितारूप मुनि) विचरण करते हैं।

अन्नदिणे गामाणुग्गामं विहरंतओ अ सो नाणी।
तत्थेव दुग्गिलवणे समोसढो तेहि संजुत्तो ।। 48।।

अर्थ : अन्य किसी दिन गाँव–गाँव में विचरण करता हुआ वह ज्ञानी (साधु) उसी दुर्गिल नाम के उद्यान में उनके (माता–पितारूप मुनि) सहित आया।

अह जक्खिणी अवहिणा कुमरस्साउं विआणिउं थोवं।
तं केवलिणं पुच्छइ कयंजली भत्तिसंजुत्ता।। 49।।

अर्थ : इसके बाद वह यक्षिणी (अपने) अवधिज्ञान से कुमार की आयु को अल्प जानकर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उस केवली (साधु) को पूछती है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयवं जीवियमप्पं कहमवि तीरिज्जएभिवड्ढेउं।
तो कहइ केवली सो केवलकलिअत्थवित्थारो।। 50।।

अर्थ : हे भगवन्! अल्प जीवन की संसार में वृद्धि करने के लिए किसी तरह भी (कोई) समर्थ है ? तब केवलज्ञान से विकसित अर्थ के विस्तार को (जानने वाले) वे केवली (साधु) कहते हैं –

तित्थयरा य गणधरा चक्कधरा सबलवासुदेवा य ।
अइबलिणो वि न सक्का काउं आउस्स संधाणं।।51।।

अर्थ : तीर्थङ्कर, गणधर, चक्रवर्ती, बलराम (भगवान् राम) तथा वासुदेव (श्री कृष्ण) आदि अत्यधिक बलवान होने पर भी आयु को जोड़ने (वृद्धि) के लिए समर्थ नहीं है।

जम्बुद्दीवं छत्तं मेरुं दंडं पहू करेउं जे ।
देवा वि ते न सक्का काउं आउस्स संधाणं ।। 52।।

अर्थ : जो प्रभू जम्बूद्वीप को छत्र (और) मेरु पर्वत को (उस छत्र का) दण्ड करने के लिए (समर्थ हैं) वे देवता भी आयु को जोड़ने (वृद्धि) के लिए समर्थ नहीं हैं।

यदुक्तम् –
नो विद्या न च भेषजं न च पिता नो बांधवा नो सुताः,
नाभीष्टा कुलदेवता न जननी स्नेहानुबन्धान्विता।
नार्थो न स्वजनो न वा परिजनः शारीरिकं नो बलं,
नो शक्ताः सततं सुरासुरवराः संधातुमायुः क्षमाः।। 53।।

अर्थ : यह कहा गया है– न विद्या, न औषधि, न पिता, न मित्र, न पुत्र, न पूज्य कुलदेवता, न स्नेह के बन्धन से बन्धी हुई माता, न धन –सम्पत्ति, न परिवार के व्यक्ति, न तो अन्य दूसरे व्यक्ति, न शारीरिक शक्ति और न हमेशा से शक्तिशाली देवता तथा दानव आदि आयु को जोड़ने या वृद्धि करने में समर्थ नहीं हैं।

इअ केवलिवयणाइं सुणिउं अमरी विसण्णचित्ता सा।
निअभवणं संपत्ता पणट्ठसव्वस्ससत्थ व्व।। 54।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : इस प्रकार केवली के वचनों को सुनकर दुःखी (उदास/खिन्न) मन वाली वह यक्षिणी सभी कुछ नष्ट हुए व्यापारी के समान अपने घर को पहुँची।

दिट्ठा सा कुमरेणं पुट्ठा य सुकोमलेहि वयणेहिं ।
सामिणि मणे विसण्णा अज्ज तुमं हेउणा केणं।। 55।।

अर्थ : उसे देखकर कुमार के द्वारा अत्यंत कोमल वचनों से पूछा गया– हे स्वामिनी! आज तुम किस कारण से मन में विषाद/दुःख लिये हुए हो।

किं केण वि दूहविआ किं वा केणवि न मन्निआ आणा।
किं वा मह अवराहेण कुप्पसन्ना तुमं जाया ।। 56।।

अर्थ : क्या किसी के द्वारा (तुम) दुःखित की गई हो अथवा क्या किसी के द्वारा (तुम्हारी) आज्ञा नहीं मानी गई अथवा क्या मेरे (किसी) अपराध से तुम अप्रसन्न हो गई हो।

सा किंचि वि अकहंती मणे वहंती महाविसायभरं।
निब्बंधे पुण पुट्ठा वुत्तंतं साहए सयलं।। 57।।

अर्थ : वह यक्षिणी कुछ भी नहीं कहती हुई मन में महान् विषाद के भार को ढोती रहती है। फिर आग्रह पूर्वक पूछने पर समस्त वृत्तान्त को कहती है।

सामिय मए अवहिणा तुह जीवियमप्पमेव नाऊणं।
आउसरूवं केवलिपासे पुट्ठं च कहिअं च ।। 58।।

अर्थ : हे स्वामी! मैंने अवधिज्ञान से 'तुम्हारा अल्पजीवन' है ऐसा जानकर केवली के पास (तुम्हारी) आयु के स्वरूप को पूछा था। और (उन्होंने) कहा –

चंचलं सुरचाउ व्व विज्जुलेहेव चंचलं।
पायावलग्गपंसु व्व जीयं अथिरधम्मयं।। 59।।(अतिरिक्त गाथा)

अर्थ : (यह) जीवन इन्द्रधनुष के समान चन्चल है, विद्युत की चमक की तरह चंचल (क्षणिक) है, (और) पैरों में लगी हुई धूल के समान अस्थिर धर्म (स्वरूप) वाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एएण कारणेणं नाह अहं दुक्खसल्लियसरीरा।
विहिविलसिअम्मि वंके कहं सहिस्सामि तुह विरहं ।। 60।।

अर्थ : हे नाथ! इसी कारण से मेरा शरीर दुःख से पीड़ित है। विधि (दैव) की लीला की विचित्रता में (मैं) तुम्हारे विरह को कैसे सहन करूँगी ?

कुमरो जंपइ जक्खिणी खेअं मा कुणसु हिअयमज्झम्मि।
जलबिन्दुचंचले जीविअम्मि को मन्नइ थिरत्तं।। 61।।

अर्थ : वह दुर्लभ कुमार कहता है– हे यक्षिणी! (अपने) हृदय में खेद मत करो। (क्योंकि) जल बिन्दु के समान चंचल (इस) जीवन को स्थिर क्यों मानती हो ?

जइ मज्झुवरि सिणेहं धरेसि ता केवलिस्स पासम्मि।
पाणपिए मं मुंचसु करेमि जेणप्पणो कज्जं ।। 62।।[1]

अर्थ : हे प्राणप्रिये! (तुम) यदि मेरे ऊपर स्नेह धारण करती हो तो मुझे केवली के पास छोड़ दो, जिससे (मैं) आत्म (स्वयं का) कल्याण करूँ।

तो तीइ ससत्तीए केवलिपासम्मि पाविओ कुमरो ।
अभिवन्दिअ केवलिणं जहारिहट्ठाणमासीणो।। 63।।

अर्थ : तब उस यक्षिणी की अपनी शक्ति से वह दुर्लभकुमार केवली के पास में पहुँच गया। केवली को अभिवादन करके यथायोग्य स्थान ग्रहण किया।

पुत्तस्स सिणेहेणं चिरेण अवलोइऊण तं कुमरं ।
अह रोइउं पवत्ता तत्थ ठिआ मायतायमुणी ।। 64।।

अर्थ : इसके बाद वहाँ पर बैठे हुए माता–पिता के रूप में वे मुनि बहुत समय बाद उस कुमार को देखकर पुत्र के स्नेह से रोने के लिए प्रवृत्त हुए।

---

1. भण्डारकर प्राच्यविद्या शोध संस्थान, पूना की प्रति में 62वीं गाथा के बाद 8 गाथाएँ अतिरिक्त प्राप्त होती हैं। वे गाथाएँ परिशिष्ट 'स' में दी गई हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमरो वि अयाणंतो केवलिणा समहिअं समाइट्ठो।
वंदसु कुमार मायतायमुणी इह समासीणा ।। 65।।

अर्थ : केवली के द्वारा नहीं जानने वाले कुमार को भी अत्यधिक समझाया गया/उपदेश दिए गए। (अतः) कुमार ने वहाँ बैठे हुए माता–पिता रूपी मुनि की वन्दना की।

सो पुच्छइ केवलिणं पहु कहमेसिं वयग्गहो जाओ।
तेण वि पुत्तविओगाइकारणं तस्स वज्जरिअं ।। 66।।

अर्थ : केवली को वह कुमार पूछता है – हे प्रभू! (आप) इस व्रत के आग्रह (हठ) को कैसे प्राप्त हुए? उन्होंने भी उसे (अपने) पुत्र के वियोग के कारण को बतलाया।

इअ सुणिअ सो कुमारो मोरो जह जलधरं पलोएउं।
जह य चकोरो चंदं जह चक्को चंडभाणुं व।। 67।।
जह वच्छो निअसुरभिं सुरभिं सुरभिं जहेव कलकंठो।
संजाओ संतुट्ठो हरिससमुल्लसिअरोमंचो ।। 68।।

अर्थ : जैसे मोर मेघ को, चकोर चन्द्रमा को, चकवा तेजस्वी सूर्य को, बछड़ा अपनी गाय को तथा कोयल सुगन्धित बसन्त ऋतु को देखकर संतुष्ट होते हैं (उसी प्रकार) वह दुर्लभकुमार (मुनि के उन वचनों को सुनकर) हर्ष से उल्लसित व रोमांचित/आनन्दित (शरीरवाला) हो गया।

नियमायतायमुणिणं कंठम्मि विलग्गिऊण रोयंतो।
एयाइ जक्खिणीए निवारिओ महुरवयणेहिं।। 69।।

अर्थ : अपने माता–पिता रूप मुनि के गले में लगकर रोते हुए (कुमार को) यक्षिणी ने इस प्रकार मधुर वचनों द्वारा सांत्वना दी।

निअवत्थअंचलेणं कुमारनयणाणि अंसुभरियाणि।
सा जक्खिणी विलूहइ अहो महामोहदुल्ललियं।। 70।।

अर्थ : वह यक्षिणी अपनी साड़ी के आँचल के कपड़े से कुमार के नेत्रों में भरे हुए आँसुओं को पौंछती है। (सोचती है) अरे! (यह शरीर ही)महान् मोह की दुष्ट/भयानक लीला (वाला है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियमायतायदंसणसमुल्लसंतप्पमोअभरभरिअं।
केवलनाणिसगासे अमरी विणिवेसए कुमरं।। 71।।

अर्थ : अपने माता–पिता के दर्शन से उत्पन्न मोह के संताप से भरे हुए उस कुमार को यक्षिणी ने केवलज्ञानी के पास बैठाया।

अह केवली वि सव्वेसिं तेसिमुवगारकारणं कुणइ।
धम्मद्देसणसमए[1] अमयरससारणीसरिसं।। 72।।

अर्थ : इसके बाद केवलज्ञानी मुनि ने उसके सभी प्रकार के उपकार के कारणों को (कल्याण के कार्यों को) करके अमृतरस के प्रवाह के समान आत्म–धर्म का उपदेश (दिया)।

जो भविओ मणुअभवं लहिउं धम्मप्पमायमायरइ।
सो लद्धं चिंतामणिरयणं रयणायरे गमइ।। 73।।

अर्थ : जो भव्य जीव मनुष्य भव को प्राप्त करके धर्म के आचरण में प्रमाद करता है वह प्राप्त किए गए चिंतामणि रत्न को समुद्र में खो देता।

तथाहि–
एगम्मि नयरपवरे अत्थि कलाकुसलवाणिओ को वि।
रयणपरिक्खागंथं गुरुण पासम्मि अब्भसइ।। 74।
उसी प्रकार –

अर्थ : एक श्रेष्ठ नगर में कलाओं में कुशल कोई वणिक (व्यापारी) रहता था। (वह) गुरु के पास में रत्नों की परीक्षा (जाँचने) वाले ग्रन्थ का अभ्यास करता था।

सोगंधियकक्केयणमरगयगोमेयइंदनीलाणं।
जलकंतसूरकंतयमसारगल्लंकफलिहाणं।। 75।।
इच्चाइयरयणाणं लक्खणगुणवण्णनामगोत्ताइं।
सव्वाणि सो विआणइ विअक्खणो मणिपरिक्खाए।। 76।।

---

1. धम्मस्स देसणं समये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : सौगन्धिक, कर्केतन, मरकत, गोमेद, इन्द्रनील, जलकांत, सूर्यकान्त, मसारगल्ल, अंक, स्फटिक इत्यादि रत्नों के लक्षण, गुण, रूप (रंग), नाम व गोत्र आदि मणियों की परीक्षा करने में विलक्षण/तीक्ष्ण बुद्धिवाला वह (व्यापारी) सभी प्रकार के (मणियों को) जानता है।

अह अन्नया विचिंतइ सो वणिओ किमवरेहि रयणेहिं।
चिंतामणी मणीणं सिरोमणी चिंतिअत्थकरो।। 77।।

अर्थ : इसके बाद एक बार वह व्यापारी विचार करता है (कि) अन्य (दूसरे) रत्नों से क्या (प्रयोजन) ? इच्छित वस्तु (कामना) को पूर्ण करने वाला चिंतामणि रत्न (समस्त) मणियों में श्रेष्ठ है।

तत्तो सो तस्स कए खणेइ खाणीउ णेगठाणेसु।
तह वि न पत्तो स मणी विविहेहि उवायकरणेहिं।। 78।।

अर्थ : तब वह (व्यापारी) उस चिंतामणि के निमित्त से अनेक स्थानों में खानों को खोदता है। फिर भी अनेक प्रकार के उपायों को करने से (भी) उसे मणि प्राप्त नहीं होती।

केण वि भणिअं वच्चसु वहणे चडिऊण रयणदीवम्मि।
तत्थत्थि आसपूरी देवी तुह वंछियं दाही।। 79।।

अर्थ : (तब) किसी के द्वारा कहा गया (तुम) जहाज पर चढ़कर रत्नद्वीप को जाओ। वहाँ आशापूरी देवी है (वह) तुम्हें इच्छित वस्तु देगी।

तो तत्थ रयणदीवे संपत्तो इक्कवीसखवणेहिं।
आराहइ तं देविं संतुट्ठा सा इमं भणइ।। 80।।

अर्थ : तब (वह व्यापारी) वहाँ रत्नद्वीप में पहुँचा। इक्कीस व्रतों की आराधना द्वारा उस आशापूरी देवी को संतुष्ट किया। वह देवी इस प्रकार कहती है–

भो भद्द केण कज्जेण अज्ज आराहिआ तए अहयं।
सो भणइ देवि चिंतामणीकए उज्जमो एसो।। 81।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : हे महानुभाव! आज किस कार्य से तुम अधिक आराधना कर रहे हो। वह (व्यापारी) कहता है– हे देवी! चिंतामणि रत्न के लिए यह उद्यम है।

देवी भणेइ भो भो नत्थि तुहं कम्ममेव सम्मकरं।
जेणप्पन्ति सुरा वि य धणाणि कम्माणुसारेणं।। 82।।

अर्थ : देवी कहती है– अरे!–अरे!! (भद्रपुरुष) तुम्हारे कर्म ही अच्छा/शुभ करने योग्य नहीं हैं। क्योंकि देवता भी कर्मों के अनुसार धन अर्पित करते हैं।

सो भणइ जइ मह कम्मं हवेइ तो तुज्झ कीस सेवामि।
तं मज्झ देसु रयणं पच्छा जं होउ तं होउ।। 83।।

अर्थ : वह (व्यापारी) कहता है– यदि मेरे कर्म (शुभ) होते, तो तुम्हारी क्यों सेवा करता। इसलिए मुझे रत्न दें। बाद में जो हो, सो हो।

दत्तं चिंतारयणं तो तीए तस्स रयणवणिअस्स।
सो निअगिहगमणत्थं संतुट्ठो वाहणे चडिओ।। 84।।

अर्थ : तब उस रत्न के व्यापारी को उस देवी ने चिंतामणि रत्न दिया। संतुष्ट होता हुआ वह अपने घर जाने के लिए जहाज पर चढ़ गया ।

पोअपएसनिविट्ठो वणिओ जा जलहिमज्झमायाओ।
ताव य पुव्वदिसाए समुग्गओ पुण्णिमाचंदो।। 85।।

अर्थ : जहाज के प्रदेश पर (ऊपर वाले भाग पर) बैठा हुआ वह व्यापारी जब समुद्र के मध्यभाग में आया, तब पूर्व दिशा में पूर्णिमा का चाँद उदित हो गया।

तं चंदं दट्ठूणं निअचित्ते चिंतए सो वाणियओ।
चिंतामणिस्स तेअं अहियं अहवा मयंकस्स।। 86।।

अर्थ : उस चन्द्रमा को देखकर वह व्यापारी अपने चित्त (मन) में विचार करता है (कि) चिंतामणि रत्न का तेज अधिक है अथवा चन्द्रमा का।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इअ चिंतिऊण चिंतारयणं निअकरतले गहेऊणं ।
नियदिट्ठीइ निरिक्खइ पुणो पुणो रयणमिंदुं य ।। 87 ।।

अर्थ : इस प्रकार विचार करके चिंतामणि रत्न को स्वयं की हथेली पर लेकर के अपनी दृष्टि से बार–बार रत्न और चन्द्रमा को देखता है।

इअ अवलोअंतस्स य तस्स अभग्गेण करतलपएसा।
अइसुकुमालमुरालं रयणं रयणायरे पडियं।। 88।।

अर्थ : इस प्रकार उसको (रत्न तथा चन्द्रमा को) देखते हुए दुर्भाग्य से (उस व्यापारी की) हथेली से अत्यन्त सुकुमार एवं मूल्यवान वह रत्न समुद्र में गिर गया।

जलनिहिमज्झे पडिओ बहु बहु सोहंतएण तेणावि।
किं कह वि लब्भइ मणी सिरोमणी सयलरयणाणं।। 89।।

अर्थ : समुद्र के बीच में गिरे हुए समस्त रत्नों में शिरोमणि (उत्कृष्ट) उस चिंतामणि रत्न को बार–बार खोजने (ढूँढ़ने) पर भी क्या कोई भी (किसी तरह) प्राप्त कर सकता है ? (अर्थात् कोई प्राप्त नहीं कर सकता)।

तह मणुयत्तं बहुविहभवभमणसएहि कहकह वि लद्धं।
खणमित्तेण हारइ पमायभरपरवसो जीवो।। 90।।

अर्थ : प्रमाद से भरे हुए (और उसके) अधीन, अनेक प्रकार के सैकड़ों भवों में भ्रमण करता हुआ जीव किसी तरह से (बड़ी कठिनाई पूर्वक) प्राप्त किए गए मनुष्यभव को क्षणमात्र में उसी प्रकार (मणि के समान) नष्ट कर देता है।

ते धन्ना कयपुण्णा जे जिणधम्मं धरंति निअहियए।
तेसिं चिअ मणुयत्तं सहलं सलहिज्जए लोए।। 91।।

अर्थ : जो जिनधर्म को अपने हृदय में धारण करते हैं, वे पुण्यशाली (व्यक्ति) धन्य हैं। उनका ही मनुष्यपना इस संसार में सफल तथा प्रसंशा करने योग्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इअ देसणं सुणेउं सम्मत्तं जक्खिणीइ पडिवन्नं।
कुमरेण य चारित्तं गरुयं गुरुअंतिए गहिअं।। 92।।

अर्थ : इस प्रकार उपदेश को सुनकर यक्षिणी ने सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया और कुमार के द्वारा गुरु के पास अत्यधिक कठिन चारित्र धर्म (मुनि धर्म) को ग्रहण किया गया।

थेराणं पयमूले चउदसपुव्वीमहिज्जइ कुमारो।
दुक्करतवचरणपरो विहरइ अम्मापिऊहि समं।। 93।।

अर्थ : मुनियों (आचार्यों) के चरणों में रहकर चौदह पूर्व ग्रन्थों का अध्ययन करता हुआ वह दुर्लभकुमार दुष्कर (कठिन) तपश्चरण में तल्लीन (निपुण) माता–पिता के साथ विहार/विचरण करता है।

कुमरो अम्मापियरो तिण्णि वि ते पालिऊण चारित्तं।
महसुक्के सुरलोए उववन्ना मंदिरविमाणे।। 94।।

अर्थ : दुर्लभकुमार, (उसके) माता तथा पिता, वे तीनों ही चारित्र धर्म को पालकर महाशुक्र नाम के देवलोक के मन्दिर विमान में उत्पन्न हुए।

सा जक्खिणी वि चइउं वेसालिए अ भमरभूवइणो।
मज्जा जाया कमला नामेणं सच्चसीलधरा।। 95।।

अर्थ : वह यक्षिणी भी च्युत होकर (आयु के पूर्ण होने पर) वैशाली नगरी में भ्रमरराजा की सत्य और शील की धारक कमला नाम की पत्नी हुई।

भमरनरिंदो कमलादेवी य दुवे वि गहियजिणधम्मा।
अंतसुहज्झवसाया तत्थेव य सुरवरा जाया।। 96।।

अर्थ : भ्रमरराजा और कमलादेवी दोनों ही जिन धर्म को ग्रहण करके अं समय में शुभ ध्यान के कारण (महाशुक्र नामक स्वर्ग में) श्रेष्ठ दे हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतश्च –

रायगिहं वरनयरं वरनयरंगंतमंदिरं अत्थि।
धणधन्नाइसमिद्धं सुपसिद्धं सयललोगम्मि।। 97।।

और इधर

अर्थ : राजगृह नामक श्रेष्ठ नगर में धन–धान्य की समृद्धि वाला समस्त लोक में प्रसिद्ध न्याय युक्त (वास्तुशास्त्रोक्त) सुन्दर (और) भव्य स्वरूप वाला मन्दिर (महल) है।

तत्थ य महिंदसीहो राया सिंहु व्व अरिकरिविणासे।
नामेण जस्स समरंगणम्मि भज्जइ सुहडकोडी।। 98।।

अर्थ : वहाँ शत्रुओं के हाथों का विनाश करने वाले सिंह के समान महेन्द्रसिंह नाम का राजा था। जिसके नाम से समरांगण (युद्ध–मैदान) में करोड़ों योद्धा भग्न/नष्ट हो जाते थे।

तस्स य कुम्मादेवी देवी इव रूवसंपया अत्थि।
विणयविवेगवियारप्पमुहगुणाभरणपरिकलिया।। 99।।

अर्थ : विनय, विवेक, विचारशील आदि मुख्य गुणों से अलंकृत तथा परिपूर्ण देवी के समान रूप से सम्पन्न उस राजा की कूर्मा (नामकी) रानी थी।

विसयसुहं भुंजंताण ताणं सुक्खेण वच्चए कालो।
जह अ सुरिंदसईणं अहवा जह वम्महरईणं।। 100।।

अर्थ : इन्द्र और शची (इन्द्राणी) अथवा कामदेव और रति के समान विषयसुखों को भोगते हुए उनका समय सुख से व्यतीत हो रहा था।

अण्णदिणे सा देवी निअसयणिज्जम्मि सुत्तजागरिया।
सुरभवणं मणहरणं पिच्छइ सुमिणम्मि अच्छरियं।। 101।।

अर्थ : किसी अन्य दिन वह कूर्मारानी अपनी शय्या पर सोती हुई जाग गई। (वह) स्वप्न में आश्चर्यजनक (एवं) मन को हरने वाले देव–भवन को देखती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाए पभायसमए सयणिज्जा उट्ठिऊण सा देवी।
रायसमीवं पत्ता जंपइ महुराहि वग्गूहिं।। 102।।

अर्थ : प्रातःकाल होने पर बिस्तर से उठकर वह रानी राजा के पास पहुँची (और) मधुर वचनों द्वारा कहती है।

अज्ज अहं सुरभवणं सुमिणम्मि पासिऊण पडिबुद्धा।
एअस्स सुमिणगस्स य भविस्सई को फलविसेसो।। 103।।

अर्थ : आज मैं स्वप्न में देवभवन को देखकर जागी हूँ, इस स्वप्न का विशेष परिणाम क्या होगा ?

इअ सुणिय हट्ठतुट्ठो राया रोमंचअंचिअसरीरो।
निअमइअणुसारेण साहइ एआरिसं वयणं।। 104।।

अर्थ : यह सुनकर हर्ष और आनन्द से रोमांचित शरीर वाला (वह) राजा अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रकार के वचनों को कहता है–

देवि तुमं पडिपुण्णे नवमासे सड्ढसत्तदिणअहिए।
बहुलक्खणगुणजुत्तं पुत्तं पाविहिसि जगनेत्तं।। 105।।

अर्थ : हे देवी! नौ माह (और) 7.5 दिन से अधिक (समय) के पूर्ण होने पर तुम अनेक लक्षणों एवं गुणों युक्त जगत् के लिए नेत्र रूप पुत्र को प्राप्त करोगी।

इअ नरवइणो वयणं सुणिऊणं हट्ठतुट्ठनिअहियया।
नरनाहअणुन्नाया सा जाया नियगिहं पत्ता।। 106।।

अर्थ : इस तरह राजा के वचन सुनकर हर्षित व आनंदित अपने हृदय वाली वह (रानी) राजा की आज्ञा को प्राप्त करके अपने घर को पहुँची।

तत्थ य कुमारजीवो देवाउं पालिऊण कुम्माए।
उअरम्मि सुकयपुण्णो सरम्मि हंसु व्व अवइण्णो।। 107।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : और वहाँ (स्वर्ग) मैं दुर्लभ कुमार का जीव देव की आयु पूर्ण करके पुण्य के प्रभाव से तालाब में हँस की तरह रानी कूर्मा के उदर में अवतीर्ण/प्रविष्ट हुआ।

रयणेण रयणखाणी जहेव मुत्ताहलेण सुत्तिउडी।
तह तेणं गब्भेणं सा सोहग्गं समुव्वहइ।। 108।।

अर्थ : जिस तरह रत्नों से उनकी खान (तथा) मुक्ताफल से (मणियों से) सीपदल सौन्दर्य को धारण करते हैं, उसी तरह वह रानी उसके (दुर्लभकुमार के जीव के) गर्भ में आने से सौन्दर्य को धारण करती है।

गब्भस्सणुभावेणं धम्मागमसवणदोहलो तीसे।
उप्पन्नो सुहपुण्णोदएण सोहग्गसंपन्नो।। 109।।

अर्थ : गर्भ के प्रभाव से (और) शुभ पुण्य के उदय से उस कूर्मारानी के (मन में) धर्म–आगम के श्रवण का सौभाग्य युक्त दोहद (इच्छा) उत्पन्न हुआ।

तो तेणं नरवइणा छद्दंसणनाइणो नयरमज्झे।
सद्दाविया जणेहिं कुम्माए धम्मसवणकए।। 110।।

अर्थ : तब उस राजा (महेन्द्रसिंह) ने (रानी कूर्मा के लिए) धर्म श्रवण के निमित्त से लोगों (सेवकों) द्वारा नगर में रहने वाले षड्दर्शन के ज्ञाताओं (जानकारों) को बुलवाया।

ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलाइविहिधम्मा।
निअपुत्थयसंजुत्ता संपत्ता रायभवणम्मि।। 111।।

अर्थ : स्नान करके, कौतुक और मंगलादि विविध धार्मिक क्रिया करके (तथा) पूजा की क्रिया करके अपनी पुस्तक (धार्मिक ग्रन्थ) सहित (वे ज्ञानी) राजभवन में पहुँचे।

कयआसीसपदाणा नरवइणा दत्तमाणसंमाणा।
भद्दासणोवविट्ठा नियनियधम्मं पयासन्ति।। 112।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : (राजा–रानी को वह ज्ञानी) आशीर्वाद प्रदान करता है। राजा के द्वारा मान–सम्मान दिए जाने पर भद्र (अच्छे) आसन पर बैठकर (वे ज्ञानी) अपने–अपने धर्म को प्रकट करते हैं।

इअरेसि दंसणीण य धम्मं हिंसाइसंजुयं सुणिउं।
जिणधम्मरया देवी अईव खेयं समावन्ना।। 113।।

अर्थ : दूसरे दर्शनों के हिंसा आदि से युक्त धर्म को सुनकर जिनधर्म में रत (तल्लीन) वह कूर्मादेवी अत्यधिक खेद को प्राप्त करती है।

यतः

ददातु दानं विदधातु मौनं वेदादिकं चापि विदांकरोतु।
देवादिकं ध्यायतु नित्यमेव न चेद् दया निष्फलमेव सर्वम्।।114।

क्योंकि –

अर्थ : दान दो, मौन धारण करो, वेद आदि ग्रन्थों को आत्मसात् (श्रद्धान्) कर ज्ञानार्जन करो, और भी देव आदि का नित्य ही ध्यान करो, (किंतु) दया नहीं (होने से) ये सब निष्फल/व्यर्थ ही हैं।

न सा दीक्षा न सा भिक्षा, न तद्दानं न तत्तपः ।
न तद् ध्यानं न तन्मौनं, दया यत्र न विद्यते।। 115।।

अर्थ : जहाँ दया नहीं है, (वहाँ) न दीक्षा है, न भिक्षा है, न दान है, न तप है, न ध्यान है (और) न मौन है।

तो नरवइणाऽऽहूया जिणसासणसूरिणो महागुणिणो।
जिणसमयतत्तसारं धम्मसरूवं परूवेन्ति।। 116।।

अर्थ : तब राजा द्वारा बुलाए गए महान् गुणवान जिन–शासन (धर्म) के आचार्य जिनदर्शन के तत्त्व के सार (तथा) धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं–

तथाहि –

छज्जीवनिकायाणं परिपालणमेव विज्जए धम्मो।
जेणं महव्वएसुं पढमं पाणाइवाययं ।। 117।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे–

अर्थ : षड्जीवनिकाय (छह प्रकार के जीवों) के परिपालन से ही धर्म होता है, क्योंकि महाव्रतों में प्रथम प्राणातिपात विरति (अहिंसा व्रत) है।

उक्तं च दशवैकालिके –

"तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसिअं।
अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो"।। 118।।

और दशवैकालिक में कहा है –

अर्थ : सर्वज्ञ भगवान् महावीर द्वारा दृष्ट उपदेशों में (महाव्रतों में) सभी जीवों में संयम रूप अहिंसा का प्रथम स्थान है।

उपदेशमालायाम् –

"छज्जीवनिकायदयाविवज्जिओ नेव दिक्खिओ न गिही।
जइधम्माओ चुक्को चुक्कइ गिहिदाणधम्माओ"।। 119।।

उपदेशमाला में (कहा है) –

अर्थ : षड्जीवनिकाय पर (छह प्रकार के जीवों पर) दया नहीं करने वाला न दीक्षित मुनि है (और) न ही श्रावक है। यतिधर्म (मुनिधर्म) से भ्रष्ट (वह) श्रावक के दान धर्म से भी भ्रष्ट हो जाता है।

इअ मुणिवरवयणाइं सुणिउं घणगज्जिओवमाणाणि।
देवीए मणमोरो परमसमुल्लासमावन्नो।। 120।।

अर्थ : मेघ की गर्जना के परिमाण वाले इस प्रकार के मुनि के श्रेष्ठ वचनों को सुनकर देवी (कूर्मारानी) का मनरूपी मोर अत्यन्त उल्लास से सम्पन्न/युक्त हो गया।

पडिपुण्णेसु दिणेसुं तत्तो संपुण्णदोहला देवी।
पुत्तरयणं पसूया सुहलग्गे वासरम्मि सुहे।। 121।।

अर्थ : तब दिन के (समय के) पूर्ण होने पर (तथा) दोहद पूर्ण होने पर शुभलग्न (मुहूर्त्त, और) शुभ दिन में देवी ने (एक) पुत्ररत्न को जन्म दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र चावसरे –

तिहां वज्जइ तूर सुतडयडंत गयणंगणि गज्जइ गडयडंत।
वरमंगलभुंगलभेरिनाद नफेरी सुणीइ नवनिनाद।। 122।।

और उसी अवसर पर –

अर्थ : वहाँ अत्यंत तड़–तड़ की आवाज करने वाला तूर्य (तुरही) वाद्य बजने लगा। आकाश स्थान (प्रांगण) में गड़–गड़ की गर्जना होने लगी। शुभ मंगल (रूप) भुंगल नाम के वाद्य विशेष का भेरीनाद (होने लगा, और) नफेरी नाम के वाद्य की नूतन आवाज सुनाई देने लगी।

विरुदावलि बोल्लइ बंदिवृंद, चिरकालचतुर नरनंदवृंद।
वरकामिणी नच्चइ अइसुरम्म, इअ उच्छव हूओ पुत्तजम्म।। 123।।

अर्थ : अनेक भाट स्तुति गाने लगे, चतुर मनुष्यों के समूह अखण्ड आनंद (लेने लगे)। सुंदर रमणियाँ अत्यंत मोहक नृत्य करने लगीं, इस तरह पुत्र–जन्म का उत्सव हुआ।

अम्मापिऊहि तस्स य धम्मस्सुयदोहलानुसारेण।
नामं गुणाभिरामं पइट्ठिअं धम्मदेवु त्ति।। 124।।

अर्थ : धर्म सुनने के दोहद के अनुसार माता–पिता के द्वारा उसका (पुत्र का) गुणों से सुशोभित "धर्मदेव" ऐसा नाम रखा गया।

उल्लावणेण कुम्मापुत्तु त्ति पइट्ठिअं अवरनामं।
इअ तस्स सत्थयाइं दुन्नि पसिद्धाइं नामाइं।। 125।।

अर्थ : बुलाने के लिए "कूर्मापुत्र" ऐसा दूसरा नाम रखा गया। इस प्रकार उसके दोनों सार्थक (उचित) नाम प्रसिद्ध हो गए।

सो पंचहि धाईहिं हत्था हत्थम्मि अंकओ अंके।
गिण्हिज्जंतो कुमरो सव्वेसिं वल्लहो जाओ।। 126।।

अर्थ : पाँच धाई–माताओं द्वारा हाथों के बीच में, हाथों पर, उत्संग पर (वक्षस्थल पर तथा) गोद में लिया जाता हुआ वह कूर्मापुत्र सभी (लोगों) में प्रिय हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बावत्तरिं कलाओ सयमेव अहिज्जए सबुद्धीए।
अज्झावओ य णवरं संपत्तो तत्थ सक्खित्तं।। 127।।

अर्थ : (वह कूर्मापुत्र) तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा स्वयं ही बहत्तर कलाओं का अभ्यास करता है और वहाँ अध्यापक मात्र का साक्षी हो गया (बन गया)।

किं तु –
पुव्वभवंतरकयचेडबंधणुच्छालणाइकम्मवसा।
सो वामणओ जाओ दुहत्थदेहप्पमाणधरो।। 128।।
वह कैसा (था)–

अर्थ : पूर्वजन्म में सेवकों तथा मित्रों (आदि) को उछालने के किए गए कर्मों के कारण कूर्मापुत्र दो हाथ के बराबर शरीर धारण करने वाला, बौना (जिसके हाथ–पैर छोटे तथा छाती और पेट उन्नत हो या ठिंगना) हो गया।

निरुवमरूवगुणेणं तरुणीजणमाणसाणि मोहिंतो।
सोहग्गभग्गजुत्तो कमेण सो जुव्वणं पत्तो।। 129।।

अर्थ : अनुपम रूप और गुणों से तरुणियों तथा मनुष्यों के (मन को) आकर्षित (मोहित) करता हुआ सौभाग्य एवं भाग्य से युक्त वह कूर्मापुत्र क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुआ।

तारुण्णे सव्वेसिं विसयविगारा बहुप्पगारा वि ।
सो पुण विसयविरत्तो कुम्मापुत्तो मुणियतत्तो।। 130।।

अर्थ : युवावस्था में सभी व्यक्तियों में अनेक प्रकार के विषय–विकार (उत्पन्न होते हैं), फिर भी तत्त्वों को जानने वाला वह कूर्मापुत्र विषयों से (संसार से) विरक्त (हो गया)।

हरिहरबंभाइसुरा विसएहि वसीकया य सव्वे वि।
धन्नो कुम्मापुत्तो विसया वि वसीकया जेण।। 131।।

अर्थ : विष्णु, शंकर, ब्रह्मादि सभी देवता विषय–सुखों के द्वारा वश में किए गए हैं। (किंतु) जिसने विषय–सुखों को भी वश में कर लिया है, (ऐसा) कूर्मापुत्र धन्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जं तेण पुव्वजम्मे सुचिरं परिपालिअं सुचारित्तं।
तं तस्स वि तारुण्णे विसयावरत्तत्तणं जायं।। 132।।

अर्थ : जो पूर्वजन्म में बहुत समय तक उत्तमचारित्र धर्म का पालन करता है, वह उसके (स्वयं के) युवावस्था को प्राप्त होने पर भी विषय–सुखों से विरक्तपने को प्राप्त होता है।

अण्णदिणम्मि मुणीसरगुणिज्जमाणं सुयं सुणंतस्स।
कुमरस्स तस्स विमलं जाईसरणं समुप्पण्णं।। 133।।

अर्थ : किसी अन्य दिन मुनीश्वर के शास्त्र के प्रवचनों को गुनते हुए एवं सुनते हुए उस कुमार को निर्मल जाति–स्मरण उत्पन्न हो गया।

जाईसरणगुणेणं संसारासारयं मुणंतस्स।
खवगस्सेणिगयस्स वि सुक्कज्झाणं पवन्नस्स।। 134।

अर्थ : जाति–स्मरण के गुण से संसार की असारता को जानता हुआ क्षपक श्रेणी के (मोक्षाभिमुखता की आठवीं अवस्था) शुक्लध्यान को प्राप्त करके–

झाणानलेण कम्मिंधणनिवहं दुस्सहं दहंतस्स।
केवलणाणमणंतं समुज्जलं तस्स संजायं।। 135।।

अर्थ : ध्यानरूपी अग्नि से कर्मरूपी ईंधन के समूह को बड़ी कठिनाई से जलाते हुए उस कूर्मापुत्र को अनन्त एवं अत्यंत उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

जइ ताव चरित्तमहं गहेमि ता मज्झ मायतायाणं।
मरणं हविज्ज णूणं सुअसोगविओगदुहिआणं।। 136।।

अर्थ : तब यदि मैं चारित्र धर्म (मुनिधर्म) को ग्रहण करता हूँ तो पुत्र के वियोग के शोक में दुःखित मेरे माता–पिता की निश्चय ही मृत्यु हो जायेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तम्हा केवलकमलाकलिओ निअमायतायउवरोहा।
चिट्ठइ चिरं घरे च्चिअ स कुमारो भावचारित्तो।। 137।।

अर्थ : इसलिए केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी से सुशोभित वह राजकुमार (कूर्मापुत्र) अपने माता–पिता के आग्रह से भावचारित्र का (पालन करता हुआ) बहुत समय तक घर पर ही रहता है।

कुम्मापुत्तसरिच्छो को पुत्तो मायतायपयभत्तो।
जो केवली वि सघरे ठिओ चिरं तयणुकंपाए।। 138।।

अर्थ : माता–पिता के चरणों की भक्ति करने वाले कूर्मापुत्र के समान कौन पुत्र (होगा) ? जो तप की अनुकम्पा से केवलज्ञानी होकर भी दीर्घकाल तक अपने घर में ही रहा हो।

कुम्मापुत्ता अन्नो को धन्नो जो समायतायाणं।
बोहत्थं नाणी वि हु घरे ठिओऽनायवित्तीए।। 139।।

अर्थ : कूर्मापुत्र के (अतिरिक्त) अन्य कौन धन्य है ? जो अपने माता–पिता की अज्ञातवृत्ति से (उन्हें) बोध (प्रतिबुद्ध) कराने के लिए केवलज्ञानी होने पर भी घर में रहा हो।

गिहवाससंठिअस्स वि कुम्मापुत्तस्स जं समुप्पन्नं।
केवलनाणमणंतं तं पुण भावस्स दुल्ललिअं।। 140।।

अर्थ : गृहस्थावस्था में रहते हुए भी कूर्मापुत्र को, जो अनंत केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वास्तव में वह भाव की शुद्धता का प्रभाव था।

भावेण भरहचक्की* तारिससुद्धंतमज्झमल्लीणो।
आयंसघरनिविट्ठो गिही वि सो केवली जाओ।। 141।

अर्थ : अन्तःपुर में रहने वाले (पुरुषों) के समान आदर्श घर में रहने वाले वे भरत चक्रवर्ती शुद्ध भाव के द्वारा गृहस्थावस्था में रहते हुए भी केवलज्ञानी हो गए।

वंसग्गिसमारूढो मुणिपवरे के वि दट्ठुं विहरन्ते।
गिहिवेसइलापुत्तो* भावेणं केवली जाओ।। 142।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : बाँस के अग्रभाग पर आरूढ़ गृहवेषी इलापुत्र किसी भी श्रेष्ठ मुनि को (भिक्षा हेतु) विचरण करते हुए देखकर शुद्ध भाव के कारण केवलज्ञानी हो गए।

आसाढभूइमुणिणो* भरहेसरपिक्खणं कुणंतस्स।
उप्पन्नं गिहिणो वि हु भावेणं केवलं नाणं।। 143।।

अर्थ : भरतेश्वर नाटक को (करते हुए) देखकर, गृहस्थावस्था में रहने पर भी आषाढभूति नामक मुनि को शुद्ध भाव के कारण केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

मेरुस्स सरिसवस्स य जत्तियमित्तं च अंतरं होइ।
दव्वत्थयभावत्थाण अंतरं तत्तियं णेयं।। 144।।

अर्थ : मेरुपर्वत और सरसों के वृक्ष का उनमें जितना अंतर होता है, उतना (ही) अन्तर द्रव्यपूजा और भावपूजा में जानो।

उक्कोसं दव्वत्थयमाराहिअ जाइ अच्चुअं जाव।
भावत्थएण पावइ अंतमुहुत्तेण णिव्वाणं।। 145।।

अर्थ : द्रव्यपूजा की अत्यधिक आराधना यदि स्वर्ग (देव–लोक) ले जाती है (तो) भावपूजा द्वारा अन्तर्मुहूर्त्त से (उससे कुछ कम समय से) निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।

अह मणुयखित्तमज्झे महाविदेहा हवन्ति पंचेव।
इक्किक्कम्मि विदेहे विजया बत्तीसबत्तीसं ।। 146।।

अर्थ : इस मनुष्य क्षेत्र में पाँच ही महाविदेह होते हैं, (उनमें) एक–एक विदेह में बत्तीस–बत्तीस विजय (होते हैं)।

भरतचक्रवर्ती, इलापुत्र और आषाढभूति मुनि की कथा के लिए परिशिष्ट 'ब' देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बत्तीसपंचगुणिया विजया उ सयं हविज्ज सट्ठिजुअं।
भरहेरवयक्खेत्तं सतरिसयं होइ खित्ताणं।। 147।।

अर्थ : बत्तीस को पाँच से गुणा करने पर एक सौ साठ विजय होते हैं। (उनमें) भरत और एरावत क्षेत्र को जोड़ने पर (5+5) कुल एक सौ सत्तर क्षेत्र होते हैं।

उक्कोसपए लब्भइ विहरंत जिणाण तत्थ सतरिसयं।
इअ पासंगिअमुत्तं पक्कंतं तं निसामेह।। 148।।

अर्थ : वहाँ प्रत्येक पवित्र क्षेत्र में विचरण करते हुए अधिकाधिक एक सौ सत्तर 'जिन' प्राप्त होते हैं। इनकी प्रस्तुत प्रासंगिक कथा कही गई है, उसे सुनो–

तथ य महाविदेहे सुपसिद्धे मंगलावईविजए।
नयरी अ रयणसंचयनामा धणधन्नअभिरामा।। 149।।

अर्थ : वहाँ महाविदेह क्षेत्र में मंगलावती विजय में धन–धान्य से युक्त, सुन्दर और सुप्रसिद्ध रत्नसंचय नाम की नगरी (थी)।

तीए देवाइच्चो चक्कधरो तेअविजिअआइच्चो।
चउसठिसहस्सरमणीरमणो परिभुंजए रज्जं।। 150।।

अर्थ : उस नगरी में सूर्य के तेज को जीतने वाला, 64000 रमणियों में रमण (आनंद) करने वाला वह देवादित्य चक्रवर्ती राज्य का उपभोग करता था।

अण्णदिणे विहरंतो जगदुत्तमनामधेयतित्थयरो।
वरतरुअरप्पहाणे तीसुज्जाणे समोसरिओ।। 151।।

अर्थ : किसी अन्य दिन विहार करते हुए जगत् में उत्तम नाम वाले तीर्थङ्कर भगवान् महावीर श्रेष्ठ प्रधान वृक्षों वाले उसी उद्यान में पधारे/आए।

वेमाणिअजोइसवणभवणेहि विणिम्मियं समोसरणं।
रयणकणयरुप्पमयप्पागारतिगेण रमणिज्जं।। 152।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : वैमानिक, ज्योतिष्क, व्यंतर (तथा) भवनवासी देवों द्वारा रत्न, सोना और चाँदी आदि से युक्त तीन प्रकार से सुन्दर समवसरण बनाया गया।

सोऊण जिणागमणं चक्की चक्को व्व दिणयरागमणं।
संतुट्ठमणो वंदणकए समेओ सपरिवारो।। 153।।

अर्थ : सूर्य के आगमन से संतुष्ट मन वाले चकवा की तरह जिन भगवान् के आगमन को सुनकर (संतुष्ट मन वाला) वह देवादित्यचक्रवर्ती राजा अपने परिवार सहित वन्दना के लिए (गया)।

तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करिय वंदिय जिणंदं।
जहजुग्गम्मि पएसे कयंजली एस उवविट्ठो।। 154।।

अर्थ : जिनेन्द्र भगवान् की दक्षिण पार्श्व से तीन बार प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दना की। इस प्रकार हाथ जोड़कर यथायोग्य स्थान पर बैठ गया।

तत्तो भविअजणाणं भवसायरतारणिक्कतरणीए।
धम्मं कहइ पहू सो सुहासमाणीइ वाणीए।। 155।।

अर्थ : तब वे प्रभू (जिनेन्द्र भगवान्) भव्य लोगों के लिए अमृत तुल्य वाणी संसार रूपी सागर से पार होने के लिए एक मात्र जहाज रूपी धर्म को कहते हैं।

भो भो सुणंतु भविआ कहमवि निगोअमज्झओ जीवो।
निग्गंतूण भवेहिं बहूएहिं लहइ मणुयत्तं।। 156।।

अर्थ : अरे! अरे!! भव्यपुरुषों ! सुनो– (यह) जीव निगोदयोनि के मध्य से निकलकर अनेक प्रकार के भावों से किसी तरह भी (बड़े प्रयत्न से) मनुष्य भव को प्राप्त करता है।

मणुअत्ते वि हु लद्धे दुलहं पाविज्ज खित्तमायरिअं।
उप्पज्जन्ति अणेगे जं दस्सुमिलक्खुयकुलेसु।। 157।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : मनुष्य भव को प्राप्त हो जाने पर भी आर्यक्षेत्र को बड़ी कठिनाई से (दुर्लभपन से) प्राप्त किया जाता है। (क्योंकि वहाँ) अनेक दस्यु एवं म्लेच्छ आदि कुलों में उत्पन्न होना पड़ता है।

आरिए क्खित्ते वि हु पत्ते पडुइंदियत्तणं दुलहं।
पाएण को वि दीसइ नरो न रोगेण रहिअतणू।। 158।।

अर्थ : आर्यक्षेत्र में जन्म लेने पर भी पूर्ण इन्द्रियों से युक्त होना (प्राप्त करना) दुर्लभ है। (यहाँ संसार में) प्रायः कोई भी व्यक्ति रोग से रहित शरीर वाला दिखाई नहीं देता है।

पत्ते वि पडुतणत्ते दुलहो जिणधम्मसवणसंजोगो।
गुरू गुरुगुणिणो मुणिणो जेण न दीसन्ति सव्वत्थ।। 159।।

अर्थ : कुशल शरीर के प्राप्त होने पर भी जिन धर्म को सुनने का संयोग दुर्लभ (कठिन) है, क्योंकि महानगुणवान गुरु (एवं) मुनि सर्वत्र दिखाई नहीं देते हैं।

लद्धम्मि धम्मसवणे दुलहं जिणवयणरयणसद्दहणं।
विसयकहपसत्तमणो घणो जणो दीसए जेण।। 160।।

अर्थ : धर्म श्रवण की प्राप्ति होने पर रत्न (के समान) जिनवचन पर श्रद्धान करना अत्यंत दुर्लभ है, क्योंकि विषय की कथाओं में आसक्त मन वाले अनेक व्यक्ति दिखाई देते हैं।

सद्दहणे संपत्ते किरिआकरणं सुदुल्लहं भणिअं।
जेणं पमायसत्तू नरं करंतं पि वारेइ।। 161।।

अर्थ : श्रद्धा के प्राप्त होने पर (धर्म को) आचरण में उतारना अत्यंत दुर्लभ (कठिन) कहा गया है, क्योंकि प्रमादरूपी शत्रु मनुष्य को (धर्माचरण) करते हुए भी रोकते हैं।

यतः

प्रमादः परमद्वेषी प्रमादः परमो रिपुः।
प्रमादो मुक्तिपूर्दस्युः प्रमादो नरकायनम्।। 162।।

अर्थ : क्योंकि– प्रमाद अत्यंत द्वेष को (उत्पन्न करने वाला है), प्रमाद सबसे बड़ा शत्रु है। प्रमाद मुक्ति को लूटने वाला है (अर्थात् मुक्ति–प्राप्ति में बाधक है तथा) प्रमाद नरक का मार्ग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते धन्ना कयपुण्णा जे णं लहिऊण सयलसामग्गिं।
चइअ पमायं चारित्तपालगा जन्ति परमपयं।। 163।।

अर्थ : समस्त सामग्री को (जैसे– मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, धर्मश्रवण और उस पर श्रद्धा) प्राप्त करके जो प्रमाद को त्याग देते हैं (तथा) चारित्र (मुनि) धर्म का पालन करते हैं, वे धन्य एवं पुण्यशाली (जीव) परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

इअ सुणिय जिणुवएसं सम्मत्तं के वि के वि चारित्तं।
भावेण देसविरइं पडिवन्ना के वि कयपुन्ना।। 164।।

अर्थ : इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् के उपदेशों को सुनकर शुद्धभाव से किसी ने सम्यक्त्व को, किसी ने चारित्र (मुनि) धर्म को (और) किसी पुण्यवान ने देशविरति (अणुव्रत) को धारण किया।

इत्थंतरे –
कमलाभमरद्दोणदुमजीवा जे पुरा गया सुक्के।
ते चविय भरहखित्ते वेयड्ढे खेअरा जाया।। 165।।

अर्थ : इसके बाद –
कमला, भ्रमर, द्रोण व द्रुमा (राजा–रानी) के जीव, जो पूर्व से ही महाशुक्र स्वर्ग में थे। वे (वहाँ) से च्युत होकर (आयु पूर्ण करके) भरत क्षेत्र में वैताढ्य पर्वत पर खेचर नामके विद्याधर हुए।

चउरो वि भुत्तभोगा चारणसमणंतिए गहिअचरणा।
तत्थेव य संपत्ता जिणिंदमभिवंदिअ निविट्ठा।। 166।।

अर्थ : (वे) चारों ही (कमला, भ्रमर,द्रोण व द्रुमा) विषयसुखों का उपभोग करते हुए चारण मुनि के पास में चारित्र धर्म को ग्रहण किया और वहीं पर पहुँच कर जिनेन्द्र भगवान् को अभिवादन करके बैठ गए।

तं दट्ठूणं पुच्छइ चक्कधरो धम्मचक्किणं नाहं।
भयवं केमी चारणसमणा सुमणा कओ पत्ता।। 167।।

अर्थ : उन्हें देखकर चक्रवर्ती (देवादित्य) धर्मचक्र के (प्रवर्तक) स्वामी को पूछता है– "हे भगवान् ! शुद्ध मन वाले चारण मुनि कौन हैं? (वे) कहाँ रहते हैं"?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता जिणवरो पयंपइ नरिन्द निसुणेहि चारणा एए।
वेअड्ढभारहाओ समागया अम्ह नमणत्थं।। 168।।

अर्थ : तब मुनि कहते हैं –"हे राजन्! सुनो ये चारण मुनि हमारी वन्दना के लिए भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत पर आए हुए हैं।

पुच्छेइ चक्कवट्टी भयवं वेअड्ढभरहवासम्मि।
किं को वि अत्थि संपइ चक्की वा केवली वा वि।। 169।।

अर्थ : (वह) देवादित्य चक्रवर्ती पूछता है – हे भगवन्! भारत वर्ष के वैताढ्य पर्वत पर क्या कोई चक्रवर्ती या केवलज्ञानी हुआ है।

जंपइ जिणो न संपइ भरहे नाणी नरिन्द चक्की वा।
किं पुण कुम्मापुत्तो गिहवासे केवली अत्थि।। 170।।

अर्थ : भगवान् जिनेन्द्र देव कहते हैं – भारत वर्ष में (इस तरह के) ज्ञानी, राजा या चक्रवर्ती नहीं हुए। किन्तु कूर्मापुत्र गृहस्थावस्था में (भी) केवलज्ञानी हुए हैं।

चक्कधरो पडिपुच्छइ भयवं किं केवली घरे वसइ।
कहइ पहू निअअम्माापिउपडिबोहाय सो वसइ।। 171।।

अर्थ : चक्रवर्ती पुनः पूछता है – "हे भगवन्! क्या केवलज्ञानी घर पर रहता है। भगवान् (प्रभू) कहते हैं – अपने माता–पिता के प्रतिबोध के लिए वे केवली (घर पर) रहते हैं।

पुच्छन्ति चारणा ते भयवं अम्हाण केवलं अत्थि।
पहुणा कहियं तुब्भं पि केवलं अत्थि अचिरेणं।। 172।।

अर्थ : वे चारण मुनि (आकाश में गमन करने की शक्ति वाले जैन मुनियों की एक जाति) भगवान् को पूछते हैं – हम लोगों में (किसी को) केवलज्ञान होगा ? प्रभु कहते हैं – तुम सभी को शीघ्र ही केवल–ज्ञान होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामिय सिवगइगामिय अम्हाणं केवलं कया अत्थि।
इअ कहिए जगदुत्तमनामजिणिंदो समुद्दिसइ।। 173।।

अर्थ : हे स्वामी! हम सबको मोक्ष प्राप्त कराने वाला केवलज्ञान कब (प्राप्त) होगा? (तब) जगत् में उत्तम नाम वाले जिनेन्द्र भगवान् इस प्रकार कहते हुए उपदेश देते हैं (व्याख्या करते हैं)।

जइआ कुम्मापुत्तो तुम्हाण कहिस्सइ सयं चेव।
महसुक्कमंदिरकहं तइआ भो केवलं अत्थि।। 174।।

अर्थ : जिस समय कूर्मापुत्र स्वयं से संबंधित महाशुक्र स्वर्ग के मन्दिर (विषय में) कहेगा, उस समय ही आपको केवलज्ञान होगा।

इअ सुणिअं मुणिअतत्ता तिगुत्तिगुत्ता जिणं नमंसित्ता।
तस्स समीवे पत्ता चउरो चिट्ठन्ति तुसिणीआ ।। 175।।

अर्थ : इस प्रकार सुनकर तत्त्वों को जानने वाले तीनों गुप्तियों (मन, वचन व काय) से युक्त जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार करके उनके समीप में पहुँचे। (वे सभी) चारों मौन होकर बैठ गए।

ते ताव तेण वुत्ता भद्दा तुज्झं जिणेण नो कहिअं।
महसुक्के जं मंदिरविमाणसुक्खं समणुभूअं।। 176।।

अर्थ : तब वे (चारण मुनि) उससे (कूर्मापुत्र से) कहते हैं – हे महानुभाव! जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा आपको अच्छी तरह अनुभव किए महाशुक्र नामक मन्दिर विमान के स्वर्ग के सुख को (निश्चय ही) नहीं कहा गया है।

इअ वयणसवणसंजायजाइसरणेण चारणा चउरो।
संभरिअपुव्वजम्मा ते खवगस्सेणिमारूढा।। 177।।

अर्थ : इस प्रकार के वचनों को सुनकर उत्पन्न जाति–स्मरण से (तथा) पूर्वजन्म के स्मरण से वे चारों चारण मुनि क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षपकश्रेणिकमः पुनरयम् –

अण॰ मिच्छ मीस सम्मं अट्ठ नपुंसित्थिवेय छक्कं च।
पुमवेअं च खवेई कोहाईए य संजलणे।। 178।।*

क्षपकश्रेणी का कम इस प्रकार है :–

अर्थ : (क्रोध ,मान , माया और लोभ) अनन्तानुबन्धी एवं संज्वलन आदि (अनन्तानुबन्धी 4, अप्रत्याख्यान 4, प्रत्याख्यान 4, संज्वलन 4) कषायें ,मिथ्यात्व, मिश्र एवं सम्यक्त्व मोहनीय, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेद (इन कर्म प्रकृतियों का) क्षय करता है।

विशेषः–दर्शनमोहनीय की 3 प्रकृतियाँ तथा चारित्रमोहनीय की 25 प्रकृतियाँ होती हैं।

गइआणुपुव्वि दो दो जाईनामं च जाव चउरिंदी।
आयावं उज्जोअं थावरनामं च सुहुमं च।। 179।।

अर्थ : तिर्यंच एवं नरक दो गतियाँ, तिर्यंच एवं नरक दो आणुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जाति व नाम कर्म, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और–

साहारणमपज्जत्तं निद्दानिद्दं च पयलपयलं च।
थीणं खवेइ ताहे अवसेसं जं च अट्ठण्हं।। 180।।

अर्थ : साधारण, अपर्याप्त, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यान (नाम कर्म की प्रकृतियाँ) वैसे ही शेष आठ कषायों (अप्रत्याख्यान 4, प्रत्याख्यान 4) का क्षय करता है।

वीसमिऊण निअट्टो दोहिं अ समएहि केवले सेसे।
पढमे निद्दं पयलं नामस्स इमाउ पयडीओ।। 181।।
देवगइआणुपुव्वी विउव्विसंघयणपढमवज्जाइं।
अन्नयरं संठाणं तित्थयराहारनामं च।। 182।।

अर्थ : विश्राम करके निवृत्ति होने पर केवलज्ञान होने के दो समय शेष रहने पर सर्वप्रथम निद्रा, प्रचला, नामकर्म की प्रकृति, देवगति,

---

* कसायपाहुड के क्षपणाधिकार की चूलिका में यह गाथा इसी रूप में प्रयुक्त हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवानुपूर्वी, वैकिय शरीर प्रथम वज्रवृषभ आदि (वज्रवृषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलिक, और सेवार्त) पाँच संहनन, दूसरे संस्थान (न्यग्रोधपरिमण्डल ,सादी, कुब्ज, वामन एवं हुंड) और तीर्थंकर नाम कर्म, आहारकनामकर्म आदि का क्षय करता है।

चरमे नाणावरणं पंचविहं दंसणं चउविगप्पं।
पंचविहमंतरायं खवइत्ता केवली होइ।। 183।।

अर्थ : अंत में पाँच ज्ञानावरणकर्म, चार दर्शनावरण (चक्षु, अचक्षु, अवधि एवं केवल)तथा पाँच अन्तराय कर्म (दान, लाभ, भोग,उपभोग एवं वीर्य)को क्षय करके केवली होते हैं।

इअ खवगसेणिपत्ता समणा चउरो वि केवली जाया।
ते गंतूण जिणंते केवलिपरिसाइ आसीणा ।। 184।।

अर्थ : इस प्रकार क्षपक श्रेणी को प्राप्त (वे) चारों ही श्रमण केवलज्ञानी हो गए। वे जिनेन्द्र भगवान् के पास में जाकर केवलज्ञानी की सभा में बैठ गए।

तत्थुवविट्ठो इंदो पुच्छइ जगदुत्तमं जिणाधीसं।
सामिअ इमेहि तुब्भे न वंदिआ हेउणा केण।। 185।।

अर्थ : वहाँ बैठे हुए इन्द्र (विद्याधरों के राजा) ने जगत् में श्रेष्ठ जिनेश्वर देव को पूछा – हे स्वामी! इन लोगों के द्वारा आपको किस कारण से वंदना नहीं की गई।

कहइ पहू एएसिं कुम्मापुत्ताउ केवलं जायं।
एएण कारणेणं एएहि न वंदिआ अम्हे।। 186।।

अर्थ : जिनेन्द्र देव कहते हैं – "यहाँ पर उन चारों में से कूर्मापुत्र को केवलज्ञान होगा, इसी कारण से इनके द्वारा मेरी (हमारी) वंदना नहीं की (गई है)"।

पुच्छइ पुणो वि इंदो कइआ एसो महव्वई भावी।
पहुणाइट्ठं सत्तमदिणस्स तइअम्मि पहरम्मि।। 187।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : इन्द्र देव (विद्याधरों का राजा) पुनः पूछता है –उस महाव्रती को ऐसा (केवलज्ञान) कब होगा? जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा गया– सातवें दिन के तीसरे पहर में (कूर्मापुत्र को केवलज्ञान होगा)।

इअ कहिऊण निउत्तो जगदुत्तमजिणवरो दिणयरो व्व।
तमतिमिराणि हरंतो विहरंतो महिअले जयइ।। 188।।

अर्थ : सूर्य के समान पृथ्वी पर विहार करने वाले अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करते हुए विजयी (वे) जगत् में उत्तम जिनेन्द्र भगवान् इस प्रकार कह कर चले गए।

तत्तो कुम्मापुत्तो गिहत्थवेसं विमुत्तु महसत्तो।
गिण्हइ मुणिवरवेसं सविसेसं निज्जिअकिलेसं।। 189।।

अर्थ : तब पराक्रमी वह कूर्मापुत्र गृहस्थवेष को छोड़कर विशेष प्रकार के क्लेशों/दुःखों को नष्ट करने वाले श्रेष्ठ मुनिवेष को ग्रहण करता है।

सुरविहिअकणयकमले अमले समलेवरहिअनिअचित्तो।
आसीणो सो केवलिपवेरो धम्मं परिकहेइ।। 190।।

अर्थ : देवताओं द्वारा निर्मित निर्मल स्वर्ण विमान पर बैठे हुए श्रम के लेप से रहित हृदय वाला वह (कूर्मापुत्र) केवली (मुनि) के श्रेष्ठ धर्म को कहता है।

तथाहि –
दाणतवसीलभावणमेआ चउरो हवन्ति धम्मस्स।
तेसु वि भावो परमो परमोसहमसुहकम्माणं।। 191।।

अर्थ : जैसे–
धर्म के दान, तप, शील व भावना (ये) 4 भेद होते हैं, उनमें भी भाव धर्म श्रेष्ठ है। (और) अशुभ कर्मों के लिए उत्कृष्ट/श्रेष्ठ औषधि है।

दाणाणमभयदाणं नाणाण जहेव केवलं नाणं।
झाणाण सुक्कझाणं तह भावो सव्वधम्मेसु।। 192।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ : जिस प्रकार दानों में अभयदान, ज्ञानों में केवलज्ञान, (और) ध्यानों में शुक्ल ध्यान (श्रेष्ठ) है। उसी प्रकार सभी धर्मों में भावधर्म (श्रेष्ठ है)।

कम्माण मोहणिज्जं रसणा सव्वेसु इंदिएसु जहा।
बंभव्वयं वएसु वि तह भावो सव्वधम्मेसु।। 193।।

अर्थ : जैसे कर्मों में मोहनीय कर्म, सभी इन्द्रियों में रसना इन्द्रिय, (तथा) महाव्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत (श्रेष्ठ) है। वैसे ही सभी धर्मों में भाव धर्म (श्रेष्ठ) है।

गिहवासे वि वसंता भव्वा पावंति केवलं नाणं।
भावेण मणहरेणं इत्थ य अम्हे उदाहरणं।। 194।।

अर्थ : गृहस्थावस्था में भी रहते हुए भव्य पुरुष मनोहर शुद्ध भाव से केवल ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। इसके लिए हमारा (मेरा) उदाहरण है।

इअ देसणं सुणित्ता अवगयतत्ता य मायपिअरो वि।
परिपालियचारित्ता वरसत्ता सुग्गइं पत्ता ।। 195।।

अर्थ : इस प्रकार उपदेशों को सुनकर तत्त्वों के जानकार, महान् पराक्रमी माता–पितारूप वे मुनि चारित्र धर्म का पालन करते हुए मोक्ष को प्राप्त हुए।

अन्नेवि बहुअभविआ आयण्णिय केवलिस्स वयणाइं।
सम्मत्तं च चरित्तं देसचरित्तं च पडिवन्ना ।। 196।।

अर्थ : दूसरे भी बहुत से भव्य लोगों ने केवली के वचनों को सुनकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र और देशविरति नामक अणुव्रत को स्वीकार (ग्रहण) किया।

इअ बोहिअबहुअनरो कुम्मापुत्तो स केवलिप्पवरो।
केवलिपरियायं पालिऊण सुचिरं सिवं पत्तो ।। 197।।

अर्थ : इस प्रकार बहुत से व्यक्तियों को समझाता हुआ वह श्रेष्ठ केवली कूर्मापुत्र दीर्घकाल तक केवली की अवस्था को पूर्ण करके मोक्ष को प्राप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुम्मापुत्तचरित्तं वेरग्गकरं सुणेइ जो भविओ।
सो सव्वपावरहिओ अणंतसुहभायणं वहइ।। 198।।

अर्थ : जो भव्य पुरुष वैराग्य को उत्पन्न करने वाले कूर्मापुत्र के चरित्र को सुनता है, वह समस्त पापों से रहित अनन्त सुख (देने वाले) भावधर्म को धारण करता है।

सिरिहेमविमलसुहगुरुसिरिजिणमाणिक्कसीसरइएणं।
रइअ पगरणमेअं वाइज्जंतं चिरं जयउ ।। 199।।

अर्थ : श्री हेमविमल के शुभ मंगलमय आचार्य श्री जिनमाणिक्य के शिष्य (अनन्तहंस) द्वारा यह प्रकरण रचा गया। वांचे (पढ़े) जाते हुए अनन्त समय तक जयशील हो।

"इति कूर्मापुत्रचरित्रं समाप्तं"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तहंसकृत

सिरिकुम्मापुत्तचरिअं

(शब्दार्थ)

(1)

असुरिंदसुरिंद = असुरों (राक्षसों) एवं देवों द्वारा, पयकमलं =चरण–कमलों को, पणय = प्रणाम किए गए, वद्धमाणं = भग. वर्धमान को, नमिऊण = नमस्कार करके, अहं = मैं, कुम्मापुत्तचरित्तं= कूर्मापुत्र के चरित्र को, समासेणं= संक्षेप में, वोच्छामि= कहता हूँ।

(2)

नयरेहापत्त= न्याय की रेखा को प्राप्त, सयलपुरिसवरे= समस्त श्रेष्ठ पुरुषों से युक्त, रायगिहे= राजगृह नामके, वरनयरे= श्रेष्ठ नगर में, गुणनिलए =गुण नामक यक्ष मन्दिर में, गुणसिलए= गुणशिलक नामक उद्यान में, वद्धमाणजिणो= भग. वर्धमान, समोसढो= आए।

(3)

मणिकणयरयण= मणि, सोना और रत्नों के, सारप्पायार= सारभूत अनेक प्रकार की, पहापरिप्फुरिअं= प्रभा से स्फुरित/शोभायमान(तथा) बहुपावकम्म= बहुत से पाप कर्मों को, ओसरणं= दूर करने वाले, देवेहि= देवों द्वारा समोसरणं= समवसरण, विहिअं =रचा गया।

(4)

तत्थ= वहाँ (बगीचे में), निविट्ठो= स्थित, कणयसरीरो= सोने के समान पीले शरीर वाले, समुद्दगम्भीरो= समुद्र के समान गम्भीर, वीरो= भग. महावीर, दाणाइचउपयारं= दान आदि चार प्रकार के, परमरम्मं= महान् और श्रेष्ठ, धम्मं= धर्म को, कहेइ= कहते हैं।

(5)

दाणतवसील= दान,तप,शील (और) भावणभेएहि= भावना के भेद से, धम्मो= धर्म, चउव्विहो= चार प्रकार का, हवइ= होता है , तेसु= उन, सव्वेसु= सभी में, भावो= भाव धर्म को, महप्पभावो= महान् भावना वाला, मुणेयव्वो= जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(6)

भावो= भाव धर्म, भवुदहितरिणी= संसार रूपी समुद्र को पार करने में (समर्थ है)। भावो= भाव धर्म, सग्गापवग्ग= स्वर्ग एवं मोक्ष, पुरसरणी=नगर रूपी नदी है, भवियाणं= भव्य/संसारी जीवों के लिए, भावो= भावधर्म, मणचिंतिअ= मन में चिंतन(और), अचिंत= अचिंतनीय, चिंतामणी= चिंतामणि के (समान है)

(7)

अवगयतत्तो = तत्वों को जानने वाला, य =और अगहियचरित्तो= चारित्र (धर्म) को धारण न करने वाला, (वह) कुम्मापुत्तो= कूर्मापुत्र, भावेण= भावधर्म के द्वारा, गिहवासे= गृहस्थावस्था में, वि=भी, वसंतो=रहते हुए, केवलं नाणं=केवलज्ञान को, संपत्तो= प्राप्त करता है।

(8)

अच्छरिअं=आश्चर्ययुक्त, कुम्मापुत्तस्स = कूर्मापुत्र के, जं=जिस, चरिअं=चरित्र को, मे=मुझसे, पुच्छसि=पूछा है, तं=उसके, समग्गमवि= समग्रस्वरूप को, गोयम=हे गौतम!, एगग्गमणो=एकाग्रचित्त, होउं=होकर, निसामेसु=सुनो।

(9)

भारहखित्तस्स=भारत क्षेत्र के, मज्झयारंमि=मध्यभाग में, जम्बुद्दीवे=जम्बूद्वीप नामक, दीवे=द्वीप में, जगप्पहाणं= जग में प्रधान, दुग्गमपुराभिहाणं=दुर्गमपुर नामका, पुरं=नगर, अत्थि=है।

(10)

य =और, तत्थ=वहाँ पर, पयावलच्छीई=प्रताप की काँति से, निज्जिअदिणिंदो= सूर्य को जीतता हुआ, दोणनरिंदो = द्रौणराजा, अरियणवज्जं=शत्रु से रहित, निक्कंटयं=निश्कंटक, रज्जं=राज्य का, णिच्चं=नित्य, पालइ=पालन करता था।

(11)

संकरदेवस्स = शंकर देव की, उमा=उमा/पार्वती (और), वासुदेवस्स=वासुदेव (विष्णु) की, रमा=रमा (लक्ष्मी) जहा=के समान, तस्स=उस, नरिंदस्स= राजा की, दुमा=द्रुमा, नामेणं=नामकी, पट्टराणिआ=पटरानी (पत्नी), अत्थि=थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(12)

सुकुमारो= अत्यन्त सुकुमार, रम्मरूवजियमारो=सुन्दर रूप में कामदेव को जीतने वाला, गुणमणिभण्डारो= गुणरूपी मणियों का भण्डार, (और), बहुजणाधारो=बहुत से लोगों का आधार, दुल्लभणामकुमारो=दुर्लभ नामका राजकुमार, तेसिं=उनका, सुओ=पुत्र, त्थि=था।

(13)

नियजुव्वण=अपने यौवन के (तथा), राजमएणं= राजमद के, परे=वशीभूत हो, सो कुमरो= वह राजकुमार, बहुकुमारे= बहुत से कुमारों (बच्चों) को, कंदुकमिव=गेंद की तरह, गयणतले = आकाश की ओर,उच्छलिंतो=उछालता हुआ, सया=सदा, रमई=खेलता था।

(14)

अण्णदिणे=किसी अन्य दिन में, दुग्गिलाभिहाणम्मि=दुर्गिल नाम के, तस्स=उस, पुरस्सुज्जाणे=नगर के उद्यान में, सुगुरु =विद्वान्, सुलोयणणामा=सुलोचन नामके, एगो=एक, केवली=केवली(मुनि), समोसढो=आए।

(15)

तत्थुजाणे=उसी उद्यान में, निच्चं=हमेशा, निवसए =निवास करने वाली, भद्दमुहीनाम= भद्रमुखी नाम की, जक्खिणी= यक्षिणी, बहुसालक्खं=बहुशाल नामक, वडद्दुम= वट वृक्ष के, अहिठिअं= नीचे वाले, भवणम्मि= भवन में, कयवासा= अपना आवास किए थी।

(16)

केवलकमलाकलियं=केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी से सुशोभित, संसयहरणं= संशय को हरण करने वाले, सुलोअणं सुगुरू = सुलोचन नाम के गुरु को, भक्तिभरेणं=भक्तिपूर्वक, पणमिय =प्रणाम करके, सा=वह, जक्खिणी= यक्षिणी, एवं=इस प्रकार, पुच्छइ=पूछती है।

(17)

भयवं=हे भगवन्, हं= मैं, पुव्वभवे= पूर्व भव में, माणवई= मानवती, नाम=नाम की, माणवी=मानवी, आसी=थी (मैं भोगों को), परिभुग्गा= पुनः-पुनः (बार-बार) भोगने हेतु, सुवेलवेलंधरसुरस्स= सुवेलवेलंधर देव की, पाणपिया=पत्नी हुई थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(18)

आउखए= आयु के पूर्ण होने पर, (मैं), इत्थ=इस, वणे=वन में, भद्दमुही नाम= भद्रमुखी नाम की,(यक्षिणी हुई थी, किन्तु) मम=मेरा भत्ता=पति, कं=किस, गइमुववन्नो=गति में उत्पन्न हुआ है, णाह=हे नाथ, आइससु=आदेश करें (बताएँ)।

(19)

तओ=तब, सुलोयणो नाम=सुलोचन नाम के, केवली=केवली (मुनि), महुरवाणीए =मधुर वचनों द्वारा, भणइ=कहते हैं, भद्दे=हे भद्रे!, निसुणसु=सुनो, तुज्झ=तुम्हारा, पिओ=प्रिय (पति), इत्थेव=इस ही, नयरे=नगर में, दोणनरवइस्स=द्रौण राजा का, सुओ=पुत्र, सुदुल्लहो=अत्यंत दुर्लभ, दुल्लहो=दुर्लभ कुमार, नाम=नाम का, उप्पन्नो=उत्पन्न हुआ है।

(20)

तं=उसे, निसुणिअ=सुनकर, हिट्ठा=हर्षित (और), भद्दमुही=भद्रमुखी, नाम= नाम की, जक्खिणी=यक्षिणी, माणवईरूवधरा= मानवती का रूप धारण करके, कुमरसमीवम्मि=कुमार के समीप में, संपत्ता= पहुँची।

(21)

बहुकुमरं=बहुत से बालकों को, उच्छालणं= उछालने में, इक्कतल्लिच्छं= एकाग्रचित्त (एवं) तल्लीन, तं=उस, कुमारं=कुमार को, दद्दूण=देखकर (और), हसिऊणं=हँसकर, सा=वह यक्षिणी, जंपइ= कहती है, इणेणं=इन, रंकेणं=गरीब/भोले बालकों से, रमणेणं=मनोरंजन करने से, किं=क्या प्रयोजन।

(22)

ताव=तब, जइ=यदि, तुज्झ=तुम्हारा, चित्तं=चित्त, विचित्तचित्तम्मि=विचित्र प्रकार के आश्चर्य में, चंचलं=चंचल, होइ=होता है, ता=तो, मज्झ= मेरे, अणुधावसु=पीछे आओ, इणं=इस, वयणं= वचन को, सुणिअ=सुनकर, सो=वह, कुमरो=राजकुमार।

(23)

तव्वअणं=उसके वचनों को (सुनकर), कुऊहलाकुलिअचित्तो= कौतूहल युक्त चित्त वाला (वह कुमार), तं=उस, कण्णं=कन्या (यक्षिणी)के, अणुधावइ=पीछे जाता है, सा= वह यक्षिणी, वि=भी, हु=वास्तव में, तप्पुरओ= शीघ्र ही, तं=उसे, निअवणं= अपने उद्यान (भवन) को, नेइ=ले जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(24)

सो=वह कुमार, पायालमज्झमाणीओ=पाताल के मध्य में स्थित, बहुसालवडस्स= बहुशाल नामक वट वृक्ष के, अहेपहेण= नीचे बने हुए, कणगमयं= सोने से युक्त, सुरभवणं= देवताओं के भवन से, अईव= अत्यधिक, रमणिज्जं= सुन्दर (उसके भवन को) पासइ= देखता है।

(25)

च=और, तं=वह (भवन), केरिसं=कैसा था, रयणमयखंभं=रत्नमय खम्भों की, पंतीकंतीभरभरिअं= पंक्तियों की काँति की चमक से चमकित, भिंतरपएसं= अंदर के प्रदेश वाला, मणिमयं=मणियों से बने हुए, धोरणि=दरवाजों के, तोरणं=तोरण वाला, तरुणं=तेज, पहाकिरणं=प्रकाश की किरण से, कब्बुरिअं=चितकबरा (विभिन्न रंगों को प्रदर्शित करने वाला था)।

(26)

मणिमयखम्भं=मणि के युक्त खम्भे के, अहिट्ठिअ= नीचे (बनी हुई), पुत्तलिआ=पुत्तलिका की, केलिखोभिअजणोहं= क्रीड़ाओं से लोगों में क्षोभ (ईर्ष्या) को उत्पन्न करने वाले (तथा), भत्ति= दीवालों पर, बहुचित्तचित्तिअं=अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित, गवक्खसंदोहं=खिड़कियों के समूह से, कयसोहं=की गई शोभा वाला (वह भवन था)

(27)

एयं=इस तरह, भुवणचित्तं= संसार के (लोगों के) चित्त को, चुज्जकरं=आश्चर्ययुक्त (एवं), अइविम्हयं=अत्यन्त विस्मय, आवन्नो= युक्त सुरभवणं=उस देवभवन को, अवलोइऊणं= देखकर, कुमरो=राजकुमार, इअ= इस तरह, चिंतिउं=विचार करने में, लग्गो=लग गया।

(28)

किं=क्या, एअं=यह, इंदजालं= इंद्रजाल (जादू) है, अहवा=अथवा, एअं=यह, (मैं), सुमिणम्मि=स्वप्न में, दीसए =देखता हूँ, अहयं= अथवा(मुझे) नियनयराओ=अपने नगर से, इह=इस, भवणे=भवन में, केण=किसके द्वारा, आणीओ=लाया गया है।

(29)

इय =इस प्रकार, संदेहाकुलिअं=संदेह से व्याकुल, कुमरं=कुमार को, पल्लंके= पलंग पर विनिवेसिऊण= बैठाकर, वन्तरवहू=व्यन्तरवधू (यक्षिणी), विन्नवइ=निवेदन करती है, सामिअ= हे स्वामी, (मेरे) वयणं= वचनों को, निसामेसु=सुनो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(30)

अज्ज=आज, मए =मैंने, चिरेणकालेण=बहुत समय बाद, अज्जुमए नाह= ऋजुमति अपने आर्य (पति) को, दिट्ठो= देखा है, (इसलिए मैं) निअकज्जे= अपने कार्य से, तुमं= तुम्हें, सुरभिवणे= सुगन्धित वन में (बने), सुरभवणे= इस देव भवन में, आणिओ= लायी हूँ।

(31)

अज्जं चिअ= आज ही, मज्झ=मेरे, मणोमणोरहो= मन का मनोरथ कप्पपायवो=कल्पवृक्ष, फलिओ=फल देने वाला हुआ है, जं=जिससे, सुकय = अच्छी तरह किए गए, सुकयवसओ=पुण्य के वश से, अज्ज=आर्य, तुमं=तुम, मज्झ=मुझे, मिलिआ=मिले हो।

विशेष – 'सि' पादपूर्त्ति के रूप में आया है।

(32)

इय= इस प्रकार, वयणं= वचन को, सोऊणं= सुनकर (और), तीसे= उसके, सुनयणं= सुन्दर नेत्रों वाले, वयणं= मुख को, दट्ठूण= देखकर, तस्स= उस (राजकुमार) के, मणम्मि=मन में, पुव्वभवस्स= पूर्व भव का, सिणेहो= स्नेह, समुल्लसिओ= उत्पन्न (उल्लसित) हो गया।

(33)

कत्थ वि= कहीं पर भी, एसा= इसे, दिट्ठा= देखा है, य= अथवा, पुव्वभवे= पूर्व भव में, एयस्स= इसका, परिचिआ= परिचय था, इय= इस प्रकार के, ऊहापोहवसा= ऊहापोह के वश से (राजकुमार को), जाईसरणं= जाति–स्मरण, समुप्पण्णं= उत्पन्न हो गया।

(34)

जाइसरणेण= जाति स्मरण से, नाऊणं= जानकर, तेणं कुमरेणं= उस कुमार के द्वारा निअपियाइ= अपनी प्रिया (यक्षिणी) के, पुरओ=सामने, समग्गो वि= समस्त, पुव्वजम्मवुत्तंतो= पूर्व जन्म का वृत्तान्त, कहिओ= कह दिया गया।

(35)

तत्तो= तब, नियसत्तीए =अपनी शक्ति से (यक्षिणी ने), अशुभाणं=अशुभ, पुग्गलाणं=पुद्गलों का (पदार्थों का), अवहरणं= अपहरण करके, तस्सरीरम्मि= उसके शरीर में, सुभपुग्गलं= शुभ पुद्गलों (पदार्थों) को, पक्खेवं= प्रेक्षित (आरोपित) करके, सुरी= देव जैसे सुख योग्य (भोगने योग्य), करिअ= बनाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(36)

पुव्वभवंतरभज्जा= पूर्व भव की पत्नी (के रूप में) लज्जाइ= लज्जा के कारण, विमुत्तु= त्यागे हुए, भोगे= भोगों को, भुंजए =भोगते हैं, एवं= इस तरह, तत्थ=वहाँ पर, ठिया= रहते हुए, दुन्नि वि= दोनों ही, विसयसुहाइं= विषय सुखों को, विलसन्ति= भोगते हैं (प्राप्त करते हैं)

(37)

अह= इसके बाद, पुत्तविओगेण= पुत्र के वियोग से, दुक्खिआ= दुःखित, तस्सम्मापियरो= उसके माता–पिता, निच्चं= हमेशा, सव्वथ वि= सभी जगह पर, सोहन्ति= खोजतें हैं (लेकिन) तं=उसका, सुद्धिं=पता (खोज), न=नहीं, लहन्ति= प्राप्त कर पाते।

(38)

देवेहिं= देवताओं के द्वारा, अवहरिअं= हरण की गई, वत्थुं= वस्तु को, नरेहि= मनुष्यों द्वारा, कहं= कैसे, पाविज्जए = प्राप्त की जा सकती है। जेण= क्योंकि, नराण=मनुष्यों (और) सुराणं=देवताओं की, सत्तीए =शक्ति में, गरुअं= अत्यधिक, अंतरं=अन्तर (होता है)।

(39)

अह= इसके बाद, दुक्खिएहिं=दुःखी मन वाले,तेहि=उन, अम्मापियरेहि= माता–पिता के द्वारा, केवली=मुनि को, पुट्ठो=पूछा गया, भयवं= हे भगवन्, कहेह=कहिए, अम्हं=हमारा, सो=वह, पुत्तो=पुत्र (दुर्लभकुमार) कत्थ=कहाँ, गओ=चला गया, अत्थि=है।

(40)

तो=तब, केवली=केवली (मुनि), पयंपइ=कहते हैं, सावहाणमणा=सावधान होकर मन पूर्वक, सवणेहि=अपने कानों से, सुणेह=सुनो, तुम्हाणं=तुम्हारा, सो=वह, पुत्तो= पुत्र (दुर्लभकुमार), वंतरीए =व्यंतर देवी (यक्षिणी) द्वारा, अवहरिओ=हरण कर लिया गया है।

(41)

केवलिवयणेणं= केवली के वचनों से, ते=उनको, अईव=अत्यधिक, अच्छरिअविम्हिआ= आश्चर्य एवं विस्मय, जाया=उत्पन्न हो गया, (वे), साहन्ति=कहते हैं, अपवित्तनरं=अपवित्र मनुष्य को, देवा=देवता आदि, कहं=कैसे, अवहरन्ति=हर लेते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(42)

यत्=यह, आगमे=आगम में, उक्तम्= कहा गया है, मणुयलोगस्स=मनुष्य लोक की, गंधो= गंध, चत्तारि=चार, पंच=पाँच, सयाइं=सौ, जोयणं=योजन, उड्ढं= ऊपर, वच्चइ=पहुँचती/जाती है, जेणं=जिससे, तेण=वे, देवा=देवता आदि, हु=निश्चय ही, न=नहीं, आयन्ति=आते हैं।

(43)

एव=इस तरह, जिणे=जिनेन्द्र भगवान् के, पंचसुकल्लाणेसु= पंच कल्याणकों में, च=और, रिसी=ऋषियों के, महतवाणुभावाओ=महान् (कठोर) तप के भाव (प्रभाव) से, य =तथा, जम्मंतर नेहेण= पूर्व जन्म के स्नेह के कारण, हु= निश्चय ही, सुरा= देवता आदि, इह=यहाँ पर (संसार में) आगच्छन्ति= आते हैं।

(44)

तउ=तब, केवलिणा=केवली के द्वारा, ते=उन्हें, तीसे=उस कुमार के, जम्मंतरसिणेहाइ=पूर्व जन्म के स्नेह आदि को, अइबलिओ=अत्यन्त बलवान (पराक्रम युक्त) कम्मपरिणामो=कर्म के परिणाम/फल को, सामिय= हो स्वामी, बिंति=कहा गया।

(45)

भयवं=हे भगवन्!, कया वि=कभी भी, कह वि= कैसे भी, अम्हाण= हमारा, कुमारसंगमो=कुमार से मिलन, होही=होगा, तेण=उन (केवली) ने, उत्तं=कहा, होही=होगा, जयेह (जया+इह)=जब यहाँ, वयम्=हम सब, पुण=पुनः, आगमिस्सामो=आएँगे।

(46)

इअ= इस प्रकार के, संबंधं=सम्बन्ध को, सुणिउं=सुनकर, कुमरमायपियरो=कुमार के माता-पिता, संविग्गा=मुक्ति की इच्छा करने लगे, य =और, लहुपुत्तं= छोटे पुत्र को, रज्जे= राज्य पर, ठविअं=बैठा कर, तयंतिए =उसी समय (उन केवली के) पास, चरणं=चरणों के, आवन्ना=आश्रित हो गए।

(47)

दुक्करतवचरणपरा= अत्यंत दुष्कृत तप को ध्याने में, परायणा=तल्लीन, दोसवज्जियाहारे=दोष रहित भोजन को (लेते हुए), निस्संगरंगचित्ता=राग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से रहित चित्त वाले, य =और, तिगुत्तिगुत्ता=तीन गुप्तियों से रक्षित, (मन वचन व कायरूप त्रिगुप्ति से सुरक्षित) वे मात–पितारूप मुनि, विहरन्ति=विचरण करते हैं।

(48)

अण्णदिणे=अन्य किसी दिन, गामाणुग्गामं=गाँव–गाँव में, विहरन्तओ=विचरण करता हुआ, सो=वह, नाणी=ज्ञानी (साधु), तत्थेव=उसी, दुग्गिलवणे=दुर्गिलनाम के उद्यान में, तेहि=उनके (माता–पिता रूप मुनि के) संजुत्तो=सहित समोसढो=आया।

(49)

अह=इसके बाद, जक्खिणी=यक्षिणी (अपने), अवहिणा= अवधिज्ञान से, कुमरस्साउं=कुमार की आयु को, थोवं=अल्प, विआणिउं=जानकर, भत्तिसंजुत्ता=भक्ति पूर्वक, कयंजली=हाथ जोड़कर, तं=उस, केवलिणं=केवली को, पुच्छइ=पूछती है।

(50)

भयवं=हे भगवन्!, जीवियमप्पं=अल्प जीवन की, भवड्ढेउं=संसार में वृद्धि करने के लिए, कहमवि=किसी तरह भी (कोई) तीरिज्जएइ=समर्थ है, तो=तब, केवलकलिअत्थवित्थारो= केवलज्ञान से विकसित अर्थ के विस्तार को (जानने वाले), केवली=केवली, कहइ=कहते हैं।

(51)

तित्थयरा= तीर्थंकर, गणधारा= गणधार, चक्कधरा=चक्रवर्ती, सबलवासुदेवा=बलराम (राम) तथा वासुदेव (श्रीकृष्ण), अइबलिणो= अत्यधिक बलवान होने पर, वि=भी, आउस्स=आयु को, संधाणं= जोड़ने/वृद्धि, काउं=करने के लिए, सक्का=समर्थ, न=नहीं हैं।

(52)

जे=जो, पहू= प्रभू (ईश्वर), जम्बुद्दीवं=जम्बुद्वीप को, छत्तं=छत्र (और), मेरुं=मेरु पर्वत को (इस छत्र का), दंडं=दण्ड, करेउं=करने के लिए (समर्थ हैं), ते=वे, देवा=देवता, वि=भी, आउस्स=आयु को, संधाणं=जोड़ने/वृद्धि, काउं=करने के लिए, सक्का=समर्थ, न=नहीं हैं।

(53)

नो=न, विद्या=विद्या, न=न, भेषजं=औषधि, न=न, पिता=पिता, नो=न, बान्धवा=मित्र, नो=न, सुता=पुत्र, नाभीष्टा=न पूज्य, कुलदेवता=कुलदेवता, न=न, स्नेहानुबन्धान्विता= स्नेह के बन्धन से बन्धी हुई, जननी=माता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न= न, अर्थो= धन/संपति, न= न, स्वजनो= स्वजन (परिवार के व्यक्ति), न वा= और न ही, परिजनः= अन्य दूसरे व्यक्ति, नो= न, शारीरिकं= शारीरिक, बलं= बल, च= और, नो= न, सततं= हमेशा से, शक्ताः= शक्तिशाली, सुरासुरवरा= देवता तथा दानव (आदि) , आयु= आयु को, संधातुम्= जोड़ने (वृद्धि) को, क्षमा= क्षमा (कम या ज्यादा कर सकते हैं)।

(54)

इअ=इस प्रकार, केवलिवयणाइं=केवली के वचनों को, सुणिउं=सुनकर, विसण्णचिता=दुःखी/उदास मन वाली, सा=वह, अमरी=यक्षिणी, पणट्ठसव्वस्स= सभी कुछ नष्ट हुए, सत्थ व्व= व्यापारी के समान, निअभवणं=अपने घर को, संपत्ता=पहुँची।

(55)

सा=उसको (यक्षिणी), दिट्ठा= देखकर, कुमरेणं=कुमार के द्वारा, सुकोमलेहि= अत्यन्त कोमल (सरस), वयणेहिं=वचनों से, पुट्ठा=पूछा गया, सामिणि=हे स्वामिनी!, अज्ज=आज, तुमं=तुम, केणं=किस, हेउणा=कारण से, मणे=मन में, विसण्णा=दुःखी हो।

(56)

किं=क्या, केण वि= किसी के द्वारा, (तुम) दूहविआ= दुःखित की गई हो, वा=अथवा, किं=क्या, केण वि=किसी के द्वारा (तुम्हारी), आणा=आज्ञा, न=नहीं, मन्निआ= मानी गई है, वा=अथवा, किं=क्या, मह=मेरे, अवराहेण=अपराध से, तुमं=तुम, कुप्पसन्ना=अप्रसन्न, जाया=हो गई हो।

(57)

सा=वह, किंचि वि=कुछ भी, अकहन्ती=नहीं कहती हुई, मणे=मन में, महाविसायभरं= महान् विषाद के भार को, वहन्ती=ढोती हुई रहती है, पुण=फिर, निब्बंधे=आग्रहपूर्वक, पुट्ठा=पूछने पर, सयलं=समस्त, वुत्तंतं= वृत्तांत को, साहए =कहती है।

(58)

सामिय =हे स्वामी!, मए =मैंने, अवहिणा=अवधिज्ञान से, तुह= तुम्हारा, जीवियमप्पं=अल्प जीवन है, एव=ऐसा, नाऊणं=जानकर, केवलिपासे=केवली के पास (जाकर,तुम्हारी), आउसरूवं= आयु के स्वरूप को, पुट्ठं= पूछा था, च=और (उन्होंने), कहियं=कहा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(59)

(यह) जीयं= जीवन, सुरचाउ व्व= इंद्र धनुष के समान, चंचलं= चंचल है, विज्जुलेहेव= विद्युत की चमक की तरह, चंचलं=चंचल (क्षणिक) है, पायावलग्ग= पैरों में लगी हुई है, पंसुव्व= धूल के समान, अथिर=अस्थिर (अनित्य), धम्मयं= धर्म/स्वरूप वाला है।

(60)

नाह= हे नाथ!, एएण= इसी, कारणेणं=कारण से, अहं= मेरा, सरीरा=शरीर, दुक्खसल्लिया= दुःख से पीड़ित है, विहिविलसिअम्मि= विधि (दैव) की लीला की, वंके= विचित्रता में, (मैं), तुह= तुम्हारे, विरहं=विरह को, कहं=कैसे, सहिस्सामि=सहन कर सकूँगी ।

(61)

कुमरो= दुर्लभ कुमार, जंपइ=कहता है, जक्खिणी= हे यक्षिणी, हिअअमज्झम्मि= (अपने) हृदय में, खेअं= खेद, मा=मत, कुणसु=करो, (क्योंकि) जलबिन्दुचंचले= जलबिन्दु के समान चंचल (इस), जीविअम्मि= जीवन को, थिरत्तं= स्थिर, को= क्यों, मन्नइ= मानती हो।

(62)

जइ=यदि, मज्झुवरि= मेरे ऊपर (तुम), सिणेहं= स्नेह, धरेसि= धारण करती हो, ता=तो, पाणपिए = हे प्राणप्रिये !, मं=मुझे, केवलिस्स= केवली के, पासम्मि= पास में, मुंचसु= छोड़ दो, जेण= जिससे (मैं) अप्पणो= आत्म (स्वयं का), कज्जं= कल्याण (कार्य), करेमि= करता हूँ।

(63)

तो= तब, तीइ= उस यक्षिणी की, ससत्तीए = अपनी शक्ति से, कुमरो= वह दुर्लभ कुमार, केवलिपासम्मि= केवली के पास में, पाविओ= पहुँच गया, केवलिणं= केवली को, अभिवंदिअ= अभिवादन कर, जहारिहं= यथायोग्य, अट्ठाणं=स्थान, आसीणो= ग्रहण किया।

(64)

अह=इसके बाद, तत्थ=वहाँ पर, ठिआ= स्थित (बैठे हुए), मायतायमुणी= माता–पितारूप वे मुनि, चिरेण=बहुत समय बाद, तं कुमरं=उस कुमार को, अवलोइऊण=देखकर, पुत्तस्स= पुत्र के, सिणेहेणं= स्नेह से, रोइउं= रोने के लिए, पवत्ता= प्रवृत्त/तैयार हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(65)

अयाणन्तो= नहीं जानने वाले, कुमरो वि= उस कुमार को भी, केवलिणा= केवली के द्वारा, समहिअं= अत्यधिक, समाइट्ठो= समझाया गया (उपदेश दिए गए) (अतः), कुमार=कुमार ने, इह= वहाँ, समासीणा= बैठे हुए, मायतायमुणी= माता–पितारूप मुनि की, वंदसु= वंदना की।

(66)

केवलिणं=केवली को, सो= वह कुमार, पुच्छइ= पूछता है, पहु= हे प्रभु! (आप) एसिं= इस, वयगाहो=व्रत के आग्रह को (हठ को), कहं= कैसे, जओ= प्राप्त हुए, तेण= उन्होंने, वि= भी, तस्स=उसको (अपने), पुत्तविओगाइकारणं= पुत्र के वियोग आदि के कारण को, वज्जरिअं= बतलाया/कहा।

(67–68)

इय = इस प्रकार, सुणिअ=सुनकर, जह=जिस प्रकार, मोरो= मोर, जलधरं= जलधर (मेघ) को, व=अथवा, जह= जैसे, चकोरो= चकोर (पक्षी), चंदं=चन्द्रमा को, व= अथवा, जह= जैसे, चक्को= चकवा, चंडभाणुं= तेजस्वी सूर्य को, जह=जैसे, वच्छो= बछड़ा, निअसुरभिं= अपनी गाय को, एव= तथा, कलकण्ठो= कोयल, सुरभिं= संगन्ध से युक्त, सुरभिं= बसन्त ऋतु को, पलोएउं= देखकर, संतुट्ठो= संतुष्ट, संजाओ= होते हैं, (उसी प्रकार) सो कुमारो= वह राजकुमार, हरिस= हर्ष, समुल्लसिओ= उल्लसित (एवं), रोमंचो= रोमांचित, आनन्दित (शरीर वाला), संजाओ= हो गया।

(69)

नियमायतायमुणिणं= अपने माता–पितारूप मुनि के, कंठम्मि= कंठ में (गले में), विलग्गिऊण= लगकर (लिपटकर), रोयन्तो=रोते हुए (कुमार को), जक्खिणीए = यक्षिणी द्वारा, एयाइ= उसी समय, महुरवयणेहिं= मधुर वचनों से, निवारिओ= रोका गया(या सांत्वना दी गई)

(70)

सा=वह, जक्खिणी= यक्षिणी, निअवत्थअंचलेणं= अपनी साड़ी के आँचल के कपड़े से, कुमारनयणाणि= कुमार के नेत्रों में, अंसुभरियाणि= भरे हुए आँसुओं को, विलूहइ= पौंछती है (वह सोचती है), अहो= अरे, (यह शरीर) महामोहदुल्ललियं= महान् मोह की भयानक/ दुष्ट लीला (वाला है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(71)

नियमायतायदंसणं= अपने माता–पिता के दर्शन से, समुल्लं= उत्पन्न, मोअं= मोह के, संतप्पं= संताप से, भरभरिअं= भरे हुए, कुमरं= उस कुमार को, अमरी= यक्षिणी ने, केवलनाणिसगासे= केवलज्ञानी के पास में, विणिवेसए = बैठाया।

(72)

अह= इसके बाद, केवली= केवलज्ञानी मुनि ने, तेसिं= उसके, सव्वेसिं= सभी प्रकार के, उवगारकारणं= उपकार के कारणों को (कल्याण कार्यों को), कुणइ= करके, अमयरसं= अमृत रस के, सारणीसरिसं= प्रवाह के समान, धम्मदेसणसमए =आत्म–धर्म का उपदेश (दिया) –

(73)

जो= जो, भविओ= भव्य जीव, मणुअभवं= मनुष्यभव को, लहिउं= प्राप्त करके, धम्मप्पमायमायरइ= धर्म के आचरण में प्रमाद करता हुआ, सो=वह, लद्धं= प्राप्त किए गए, चिंतामणिरयणं= चिंतामणि रत्न को, रयणायरे= समुद्र में, गमइ= खो देता है।

(74)

तथाहि= उसी प्रकार, कोवि= किसी भी, एगम्मि= एक, नयरपवरे= श्रेष्ठ नगर में, कलांकुसलवाणिओ= कलाओं में कुशल वणिक (व्यापारी), अत्थि= था, (वह) गुरूण= गुरु के, पासम्मि= पास में, रयणपरिक्खागंथं= रत्नों की परीक्षा (जाँचने) वाले ग्रंथ का, अब्भसइ= अभ्यास करता था।

(75–76)

सोगंधियं= सौगंधिक, कक्केयणं= कर्केतन, मरगयगोमेयं= मरकत, गोमेद, इंदनीलाणं= इंद्रनील, जलकंतं= जलकान्त, सूरकंतयं=सूर्यकान्त, मसारगल्लं=मसारगल्ल, अंकं= अंक, फलिहाणं= स्फटिक, इच्चाइय= इत्यादि, रयणाणं= रत्नों के, लक्खणगुणवण्णं= लक्षण, गुण, रंग (रूप), नामगोत्ताइं= नाम व गोत्र आदि, मणिपरिक्खाए = मणियों की परीक्षा करने में, वियक्खणो= विलक्षण/तीक्ष्ण बुद्धिवाला, सो= वह (व्यापारी), सव्वाणि= सभी प्रकार के (मणियों को), विआणइ= जानता है।

(77)

अह=इसके बाद, अन्नया= एक बार, सो= वह, वणिओ= व्यापारी, विचिंतइ= विचार करता है, अवरेहि= अन्य, रयणेहिं= रत्नों से, किं= क्या (प्रयोजन),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंतिअत्थकरो= इच्छित वस्तु (कामना) को पूर्ण करने वाला, चिंतामणी= चिंतामणि रत्न, मणीणं=समस्त मणियों में, सिरोमणी= श्रेष्ठ है।

(78)

तत्तो= तब, सो= वह (व्यापारी), तस्स= उस चिंतामणि के, कए = निमित्त से, णेगठाणेसु= अनेक स्थानों में, खाणीउ= खानों को, खणेइ= खोदता है, तह वि= फिर भी, विविहेहि= अनेक प्रकार के, उवायकरणेहिं= उपायों को करने से (भी), स= उसे, मणी= मणि, न पत्तो= प्राप्त नहीं होती।

(79)

(तब) केण वि= किसी के द्वारा, भणिअं= कहा गया (तुम), वहणे= जहाज पर, चडिऊण= चढ़कर, रयणदीवम्मि= रत्नद्वीप को, वच्चसु= जाओ, तत्थ= वहाँ, आसपूरी देवी= आशापूरी देवी, अत्थि= है (वह) तुह= तुम्हें, वंछियं= इच्छित वस्तु, दाही = देगी।

(80)

तो= तब (वह व्यापारी), तत्थ= वहाँ, रयणदीवे= रत्नद्वीप में, संपत्तो= पहुँचा, इक्कवीसखवणेहिं= 21 व्रतों की, आराहइ= आराधना द्वारा, तं= उस आशापूरी, देविं= देवी को, संतुट्ठा= संतुष्ठ किया, सा= वह देवी, इमं= इस प्रकार, भणइ= कहती है।

(81)

भो भद्द = हे महानुभाव, अज्ज= आज, केण= किस, कज्जेण= कार्य से, तए = तुम, अहयं= अत्यधिक, आराहिआ= आराधना करते हो, सो= वह (व्यापारी), भणइ= कहता है, देवि= हे देवी, चिंतामणीकए = चिंतामणि रत्न के लिए, एसो= यह, उज्जमो= उद्यम (है)

(82)

देवी=देवि, भणेइ= कहती है, भो–भो= अरे!–अरे!!, (भद्रपुरुष), तुहं= तुम्हारे, कम्ममेव= कर्म ही, सम्मकरं= अच्छे/शुभ करने योग्य, नत्थि= नहीं हैं, जेण= क्योंकि, सुरा वि= देवती भी, कुम्माणुसारेणं= कर्मों के अनुसार, धणाणि= धन, अप्पन्ति= अर्पित करते हैं/देते हैं।

(83)

सो= वह (व्यापारी), भणइ= कहता है, जइ= यदि, मह= मेरे, कम्मं= कर्म (शुभ) हवेइ= होते , तो=तो, तुज्झ= तुम्हारी, कीस=क्यों, सेवामि= सेवा करता, तं= इसलिए, मज्झ= मुझे, रयणं= रत्न, देसु= दें, पच्छा= बाद में, जं= जो, होउ= हो, तं= वह, होउ= हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(84)

तो= तब, तस्स= उसको, रयणवणिअस्स= रत्न के व्यापारी/वणिक को धन, दत्तं= दिया, संतुट्ठो= संतुष्ट होता हुआ, सो= वह, निअगिहगमणत्थं= अपने घर को जाने के लिए, वाहणे= जहाज पर, चडिओ= चढ़ गया।

(85)

पोअपएसनिविट्ठो= जहाज के प्रदेश पर (ऊपर वाले भाग पर) बैठा हुआ, वणिओ= वह व्यापारी, जा= जब, जलहिमज्झमायाओ= समुद्र के मध्य भाग में आया, ताव= तब, पुव्वदिसाए = पूर्व दिशा में, पुण्णिमाचंदो= पूर्णिमा का चाँद, समुग्गओ= उदित हो गया।

(86)

तं= उस, चंदं= चन्द्रमा को, दट्ठूण= देखकर, सो= वह, वाणियओ= व्यापारी, निअचित्ते= अपने चित्त (मन) में, चिंतए = विचार करता है (कि), चिंतामणिस्स= चिंतामणि रत्न का, तेयं= तेज (प्रकाश), अहियं= अधिक (है), अहवा= अथवा, मयंकस्स= चंद्रमा का।

(87)

इअ = इस प्रकार, चिंतिऊण= विचार करके, चिंतारयणं= चिंतामणिरत्न को, निअकरतले= अपनी हथेली पर, गहेऊणं= लेकर के, नियदिट्ठीइ= अपनी दृष्टि से, पुणो पुणो= बार–बार, रयणं= रत्न, य= और, इंदुं= चन्द्रमा को, निरिक्खइ= देखता है।

(88)

इअ = इस तरह, तस्स= उसको (रत्न तथा चन्द्रमा को), अवलोअंतस्स= देखते हुए, अभग्गेण= दुर्भाग्य से (उस व्यापारी की), करतलपएसा= हथेली से, अइसुकुमालमुरालं= अत्यंत सुकुमार एवं मूल्यवान, रयणं= वह रत्न, रयणायरे= समुद्र में, पडियं= गिर गया।

(89)

जलनिहिमज्झे= समुद्र के बीच में, पडिओ= गिरे हुए, सयलरयणाणं= समस्त रत्नों में, सिरोमणी= शिरोमणि (उत्कृष्ट), तेण= उसको, मणी= चिंतामणि रत्न को, बहु बहु= बार–बार, सोहंतएण= खोजने पर, वि= भी, किं= क्या, कह वि= कोई भी (किसी तरह), लब्भइ= प्राप्त कर सकता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(90)

पमायभरपरवसो= प्रमाद से भरे हुए (और उसके)अधीन, बहुविहं= अनेक प्रकार के, सएहि= सैंकड़ों, भवभमणं= भवों में भ्रमण करता हुआ, जीवो= जीव, कहकहवि= किसी तरह से (बड़ी कठिनाई पूर्वक), लद्धं= प्राप्त किए गए, मणुयत्तं= मनुष्यभव को, खणमित्तेण= क्षण मात्र में, तह= उसी प्रकार (चिन्तामणि रत्न के समान), हारइ= नष्ट कर देता है।

(91)

जे= जो, जिणधम्मं= जिन धर्म को, निअहियए = अपने हृदय में, धरंति= धारण करते हैं, ते= वे, कयपुण्णा= पुण्यशाली (व्यक्ति), धन्ना= धन्य हैं, तेसिं= उनका, चिअ = ही, मणुयत्तं= मनुष्यपना, लोए = इस संसार में, सहलं= सफल (तथा), सलहिज्जए = प्रशंसा करने योग्य है।

(92)

इअ = इस प्रकार, देसणं= उपदेश को, सुणेउं= सुनकर, जक्खिणीइ= यक्षिणी ने, सम्मत्तं= सम्यक्त्व, पडिवन्नं= स्वीकार कर लिया, च= और, कुमरेण= कुमार के द्वारा, गुरुअंतिए = गुरु के पास में, गरुयं= कठिन, चारित्तं= मुनिचारित्र को, गहिअं= ग्रहण किया गया।

(93)

थेराणं= मुनियों (आचार्यों) के, पयमूले= चरणों में रहकर, चउदसपुव्वीं= चौदह पूर्व अंग ग्रन्थों का, अहिज्जइ= अभ्यास करता हुआ, कुमारो= वह दुर्लभकुमार, दुक्करो= दुष्कर (कठिन), तवचरणपरो= तपाचरण में तल्लीन (निपुण), अम्मापिऊहि समं= माता–पिता के साथ, विहरइ= विहार/विचरण करता है।

(94)

कुमरो= कुमार, अम्मापियरो= माता व पिता, ते= वे, तिण्णि वि= तीनों ही, महसुक्के= महाशुक्र नाम के, चारित्तं= चारित्र धर्म को, पालिऊण= पालकर, मंदिरविमाणे= मंदिर विमान में, उववन्ना= उत्पन्न हुए।

(95)

सा= वह, जक्खिणी= यक्षिणी, वि= भी, चइउं= च्युत होकर (आयु के पूर्ण होने पर), वेसालिए = वैशाली नगरी में, भमरभूवइणो= भ्रमर राजा की, सच्चसीलधरा= सत्य और शील की धारक, कमला= कमला, नामेणं= नाम की, भज्जा= पत्नी, जाया= हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(96)

भमरनरिंदो= भ्रमरराजा, य = और, कमलादेवी= कमला देवी, दुवे वि= दोनों ही, गहियजिणधम्मा= जिन धर्म को ग्रहण करके, अंतसुहज्झवसाया= अंत समय में शुभ ध्यान के कारण, तत्थेव= उसी (महाशुक्र नामक स्वर्ग में), सुरवरा= श्रेष्ठ देव, जाया= हुए।

(97)

इतश्च= और इधर, रायगिहं= राजगृह नामक, वरनयरं= श्रेष्ठ नगर में, धणधन्नाइसमिद्धं= धन-धान्य की समृद्धि वाला, सयललोगम्मि= समस्त लोक में, सुपसिद्धं= प्रसिद्ध, नयं= न्याय युक्त, वरं= सुन्दर (और), रंगंत= भव्य रूप वाला, मंदिरं= मंदिर (महल) अत्थि = है।

(98)

तत्थ= वहाँ, अरिकरिविणासे= शत्रुओं के हाथों का विनाश करने वाले, सिंहु व्व= सिंह के समान, महिंदसीहो= महेन्द्रसिंह नाम का, राया= राजा था, जस्स= जिसके, नामेण= नामसे, समरंगणम्मि= समरांगण में (युद्ध मैदान में), सुहडकोडी= करोड़ों योद्धा, भज्जइ= भग्न (नष्ट) हो जाते थे।

(99)

विणयविवेग= विनय, विवेक, वियारप्प= विचारशील, (आदि), मुहगुणा= मुख्य गुणों से, भरणपरिकलिया= अलंकृत तथा परिपूर्ण, देवी इव= देवी के समान, रूवसंपया= रूप से संपन्न, तस्स= उस राजा की, कुम्मादेवी= कूर्मा (नामकी) देवी (रानी), अत्थि= थी।

(100)

सुरिंदसईणं= इन्द्र और शची (इन्द्राणी), अहवा= अथवा, वम्महरईणं= कामदेव और रति, जह= के समान, विसयसुहं= विषयसुखों को, भुंजंताणं= भोगते हुए, ताण= उनका, कालो= समय, सुक्खेण= सुख से, वच्चए = व्यतीत हो रहा था/निकल रहा था।

(101)

अण्णदिणे= किसी दिन, सा= वह, देवी= कूर्मारानी, निअसयणिज्जम्मि= अपनी शय्या पर, सुत्तजागरिया= सोती हुई जाग गई, सुमिणम्मि= स्वप्न में, अच्छरियं= आश्चर्यजनक (एवं), मणहरणं= मन को हरने वाले, सुरभवणं= देव-भवन को, पिच्छइ= देखती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(102)

पभायसमए = प्रातःकाल, जाए = होने पर, सयणिज्जा= बिस्तर से (सोती हुई), उट्ठिऊण= उठकर, सा= वह, देवी= रानी, रायसमीवं= राजा के पास, पत्ता= पहुँची (और) महुराहि= मधुर, वग्गूहिं= वचनों द्वारा, जंपइ= कहती है।

(103)

अज्ज= आज, अहं= मैं, सुमिणम्मि= स्वप्न में, सुरभवणं= देवभवन को, पासिऊण= देखकर, पडिबुद्धा= जागृत हुई हूँ, एयस्स= इसका, सुमिणगस्स= स्वप्न का, फलविसेसो= विशेष परिणाम, को= क्या, भविस्सई= होगा।

(104)

इअ = यह, सुणिय = सुनकर, हट्ठतुट्ठो= हर्ष और आनन्द से, रोमंचअंचिअसरीरो= रोमांच से युक्त शरीर वाला, राया= वह राजा, निअमइअणुसारेण= अपनी बुद्धि के अनुसार, एआरिसं= इस प्रकार के, वयणं= वचनों को, साहइ= कहता है।

(105)

देवि= हे देवी, नवमासे= नौ माह (और), सड्ढसत्तदिणअहिए = 7.5 दिन से अधिक समय , पडिपुण्णे = पूर्ण होंने पर, तुमं= तुम, बहुलक्खणगुणजुत्तं= अनेक लक्षणों एवं गुणों से युक्त, जगनेत्तं= जग के लिए नेत्र, (ऐसे), पुत्तं= पुत्र को, पाविहिसि= प्राप्त करोगी।

(106)

इअ = इस तरह के, नरवइणो= राजा के, वयणं= वचन, सुणिऊणं= सुनकर, हट्ठतुट्ठनिअहियया= हर्षित व आनन्दित अपने हृदय वाली, सा= वह (रानी), नरनाहो= राजा की, अणुन्नाया= आज्ञा को, जाया= प्राप्त कर, नियगिहं= अपने घर को, पत्ता= पहुँची।

(107)

य = और, तत्थ= वहाँ, कुमार= दुर्लभ कुमार का, जीवो= जीव, देवाउं= देव की आयु को, पालिऊण= पूर्ण करके, सुकयपुण्णो= पुण्य के प्रभाव से, सरम्मि= तालाब में, हंसु व्व= हंस की तरह, कुम्माए = कूर्मारानी के, उयरम्मि= उदर में, अवइण्णो=अवतीर्ण हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(108)

जहेव= जिस तरह, रयणेण= रत्नों से, रयणखाणी= रत्नों की खान (तथा), मुत्ताहलेण= मुक्ताफल से (मणियों से) सुत्तिउडी= सीपदल, सोहग्गं= सौंदर्य को, समुव्वहइ= धारण करते हैं, तह = उसी तरह, सा= वह रानी, तेणं= उसके, गब्भेणं= गर्भ में (आने से), सोहग्गं= सौंदर्य को, समुव्वहइ= धारण करती है।

(109)

गब्भस्सणुभावेणं= गर्भ के प्रभाव से (और), सुहपुण्णोदएण=शुभ पुण्य के उदय से, तीसे= उस कूर्मारानी के (मन में), धम्मागमसवणं= धर्म आगम के श्रवण का, सोहग्गसंपन्नो= सौभाग्य युक्त, दोहलो= दोहद (इच्छा), उप्पन्नो= उत्पन्न हुआ।

(110)

तो= तब, तेणं=उस, नरवइणा= (महेन्द्र सिंह) राजा ने (कूर्मारानी के लिए), धम्मसवणकए = धर्म श्रवण के निमित्त से, जणेहिं= सेवकों (लोगों) द्वारा, नयरमज्झे= नगर में रहने वाले, छद्दंसणनाइणो= षडदर्शन के ज्ञाताओं (जानकारों) को, सद्दाविया= बुलवाया।

(111)

ण्हाया=स्नानकरके, कोउयमंगलाइ= कौतुक और मंगलादि,कयविहिधम्मा= विविध धार्मिक क्रिया करके (तथा), कयबलिकम्मा= पूजा की क्रिया करके, निअपुत्थयसंजुत्ता= अपनी पुस्तक (धार्मिक ग्रन्थ) सहित, (वे ज्ञानी), रायभवणम्मि= राजभवन में, संपत्ता= पहुँचे।

(112)

(राजा–रानी को वह ज्ञानी) कयआसीसपदाणा= आशीर्वाद प्रदान करता है, नरवइणा= राजा के द्वारा, दत्तमाणसंमाणा= मान–सम्मान दिए जाने पर, भद्दासणो= भद्र(अच्छे) आसन पर, उवविट्ठा= बैठकर (वे ज्ञानी), नियनियधम्मं= अपने–अपने धर्म को, पयासन्ति= प्रकट/प्रस्तुत करते हैं।

(113)

इअरेसि= दूसरे, दंसणीण= दर्शनों के, हिंसाइसंजुयं= हिंसा आदि से युक्त, धम्मं= धर्म को, सुणिउं= सुनकर, जिणधम्मरया= जिन धर्म में रत, देवी= वह कूर्मादेवी, अईव= अत्यधिक, खेयं= खेद को, समावन्ना= प्राप्त करती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(114)

यतः =क्योंकि, दानं= दान, ददातु= देना, मौनं= मौन, विदधातु= धारण करना, चापि= और भी, वेदादिकं= वेद आदि ग्रंथों का, विदांकरोतु= आत्मसात् (श्रद्धान) करना/ ज्ञानार्जन करना (तथा), देवादिकं= देव आदि का, नित्यमेव= नित्य ही, ध्यायतु= ध्यान करना, (किंतु), चेद्= ये, सर्वम्= सब, दया=दया, न= नहीं, (होंने से), निष्फलमेव= निष्फल ही हैं।

(115)

यत्र = जहाँ, दया= दया, विद्यते= विद्यमान, न=नहीं है, (वहाँ), न=न, सा= वह, दीक्षा= दीक्षा है, न=न, सा=वह, भिक्षा= भिक्षा है, न=न, तत्=वह, दानं= दान है, न=न, तत्= वह, तपः = तप है, (न) तद्= वह, ध्यानं= ध्यान है, (और) न=न, तत्= वह, मौनं= मौन है।

(116)

तो= तब, नरवइणा= राजा द्वारा, आहूया= बुलाए गए, महागुणिणो= महान् गुणवान, जिणसासणसूरिणो= जिनशासन (धर्म)के आचार्य, जिणसमयतत्तसारं= जिन दर्शन के तत्व के सार (तथा), धम्मसरूवं= धर्म के स्वरूप को, परूवेन्ति= स्पष्ट करते हैं।

(117)

तथाहि= जैसे, छज्जीवनिकायाणं= षड्जीव निकाय (छह प्रकार के जीवों) के, परिपालणमेव= परिपालन से ही, धम्मो= धर्म, विज्जए = होता है, जेणं= क्योंकि, महव्वएसुं= महाव्रतों में, पढमं= प्रथम, पाणाइवायवयं= प्राणातिपात व्रत (अहिंसा) (है)।

(118)

च=और, दशवैकालिके= दशवैकालिक में, उक्तं= कहा है, (औ), महावीरेण= भगवान् महावीर द्वारा, दिट्ठा= दृष्ट, देसिअं= उपदिष्ट, तत्थिमं= उनमें (महाव्रतों में) सव्वभूएसु= सभी जीवों में, संजमो= संयम में, निउणा= निपुण, अहिंसा= अहिंसा का, पढमं= प्रथम, ठाणं= स्थान है।

(119)

उपदेशमालायाम्= उपदेशमाला में, (कहा है), छज्जीवनिकाय = षड्जीव निकाय पर (छह प्रकार के जीवों पर), दया= दया, विवज्जिओ= नहीं करने वाला, नेव= न ही, दिक्खिओ= दीक्षित मुनि है, न=न, गिही=श्रावक है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जइधम्माओ= यतिधर्म से (मुनि धर्म से), चुक्को= चूका/भ्रष्ट, गिही= श्रावक, दाणधम्माओ= दान धर्म से, (भी), चुक्कइ= चूक जाता/ भ्रष्ट हो जाता है।

(120)

घणगज्जिओवमाणाणि= मेघ की गर्जना की तरह परिमाण वाले, इअ= इस प्रकार के, मुणिवरवयणाइं= मुनि के श्रेष्ठ वचनों को, सुणिउं= सुनकर, देवीए = देवी (कूर्मारानी)का, मणमोरो= मनरूपी मोर, परमसमुल्ला= अत्यंत उल्लास से, समावन्नो= सम्पन्न/युक्त हो गया।

(121)

तत्तो= तब, दिणेसुं= दिनों के, पडिपुण्णेसु= पूर्ण होने पर, (तथा) दोहला= दोहद, संपुण्ण= पूर्ण होने पर, सुहलग्गे= शुभ लग्न (मुहूर्त्त) और, सुहे= शुभ, वासरम्मि= दिन में, देवी= देवी ने, (एक) पुत्तरयणं= पुत्र रत्न को, पसूया= जन्म दिया।

(122)

च= और, तत्र= उसी, अवसरे= अवसर पर, तिहां= वहाँ, सुतडयडंत=अत्यंत तड़–तड़ की आवाज करने वाला, तूर= तूर्य (तुरही) वाद्य, गयणंगणि= आकाश में, गडयडंत= गड़–गड़ की, गज्जइ= गर्जना होने लगी, वरमंगल= शुभमंगल (तथा) भुंगलभेरिनाद= भुंगल नामक वाद्य विषेश का भेरीनाद (होने लगा, और), नफेरी= नफेरी नाम के वाद्य की, नवनिनाद= नूतन आवाज, सुणीइ= सुनाई देने लगी।

(123)

बंदिवृन्द= अनेक भाट, विरुदावलि= स्तुति, बोल्लइ= गाने लगे, चतुर= चतुर, नरवृन्द= मनुष्य के समूह, चिरकाल= अखण्ड, अनंद= आनन्द, (लेने लगे), वरकामिणी= सुन्दर रमणियाँ, अइसुरम्म= अत्यंत मोहक, नच्चइ= नृत्य करने लगी, इअ= इस तरह, पुत्तजम्म= पुत्र जन्म का, उच्छव= उत्सव, हूओ= हुआ।

(124)

धम्मस्सुयेण= धर्म सुनने के, दोहलानुसारेण= दोहद के अनुसार, अम्मापिऊहि= माता–पिता के द्वारा, तस्स= उसका (पुत्र का), गुणाभिरामं= गुणों से सुशोभित, धम्मदेवु= धर्मदेव, त्ति= ऐसा, नामं= नाम, पइट्ठिअं= रखा गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(125)

उल्लावणेण= बुलाने के लिए, कुम्मापुत्तु= कूर्मापुत्र, त्ति= ऐसा, अवरनामं= दूसरा नाम, पइट्ठिअं= रखा गया, इअ= इस प्रकार, तस्स= उसके, दुन्नि= दोनों, सत्थयाइं= सार्थक (उचित), नामाइं= नाम, पसिद्धाइं= प्रसिद्ध हो गये।

(126)

पंचहि= पाँच, धाईहिं= धाई माताओं द्वारा, हत्था= हाथ (के बीच में), हत्थम्मि= हाथों पर, अंकओ= उत्संग पर (वक्षस्थल पर, तथा), अंके= गोद में, गिण्हिज्जंतो= लिया जाता हुआ, सो= वह, कुमरो= कूर्मापुत्र, सव्वेसिं= सभी (लोगों) में, वल्लहो= प्रिय, जाओ= हो गया।

(127)

सबुद्धीए = तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा, सयमेव= स्वयं ही, बावत्तरिं= बहत्तर, कलाओ= कलाओं का, अहिज्जए = अभ्यास करता है, य = और, तत्थ= वहाँ, अज्झावओ= अध्यापक, णवरं= मात्र (का), सक्खित्तं= साक्षी, संपत्तो= हो गया।

(128)

तु= वह, किं= कैसा (था), पुव्वभवंतरं= पूर्व जन्म में, चेडबंधणं= सेवकों एवं मित्रों को, उच्छालणाइ= उछालने के, कय = किए गए, कम्मवसा= कर्मों के कारण, सो= वह कूर्मापुत्र, दुहत्थदेहप्पमाणधरो= दो हाथ के बराबर शरीर धारण करने वाला, वामणओ= बौना (जिसके हाथ–पैर छोटे तथा छाती और पेट उन्नत हो या ठिगना) जाओ= हो गया।

(129)

निरूवमरूवगुणेण= अनुपम रूप और गुणों से, तरुणीजणमाणसाणि= तरुणियों के और मनुष्यों के (मन को), मोहिंतो= आकर्षित (मोहित) करता हुआ, सोहग्गभग्गजुत्तो= सौभाग्य और भाग्य से युक्त, सो= वह कुमार, कमेण= क्रमशः, जुव्वणं= युवावस्था को, पत्तो= प्राप्त हुआ।

(130)

तारुण्णे= युवावस्था में, सव्वेसिं= सभी व्यक्तियों में, बहुप्पगारा= अनेक प्रकार के, विसयविगारा= विषय–विकार, (उत्पन्न होते हैं) पुणवि= फिर भी, मुणियतत्तो= तत्त्वों को जानने वाला, सो= वह कूर्मापुत्र, विसयविरत्तो= विषयों से विरक्त (हो गया)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(131)

हरी= विष्णु, हरो= शंकर, बंभाइसुरा= ब्रह्मा आदि देवता, सव्वे वि= सभी, विसएहि= विषय–सुखों के द्वारा, वसीकया= वश में किए गए हैं (किंतु) जेण= जिसने, विसया वि= विषय सुखों को भी, वसीकया= वश में कर लिया है (ऐसा), कुम्मापुत्तो= कूर्मापुत्र, धन्नो= धन्य है।

(132)

जं= जो, पुव्वजम्मे= पूर्वजन्म में, सुचिरं= बहुत समय तक, सुचारित्तं= उत्तम चारित्र धर्म का, परिपालिअं= पालन करता है, तं= वह, तस्स= उसके (स्वयं के), तारुण्णे= युवावस्था को प्राप्त होने पर, वि= भी, विसयावरत्तत्तणं= विषय–सुखों से विरक्तपने को, जायं= प्राप्त होता है।

(133)

अण्णदिणम्मि= किसी अन्य दिन, मुणीसरं= मुनीश्वर द्वारा, सुयं= शास्त्र के, (प्रवचन को) गुणिज्जमाणं= गुनते हुए (चिंतन करते हुए) सुणन्तस्स= सुनते हुए, तस्स= उस, कुमरस्स= कुमार को, विमलं= निर्मल, जाइसरणं= जाति–स्मरण, समुप्पण्णं= उत्पन्न हो गया।

(134)

जाईसरणगुणेणं= जाति–स्मरण के गुण से, संसारासारयं= संसार की असारता को, मुणंतस्स= जानता हुआ, खवगस्सेणिगयस्स= क्षपक श्रेणी के (मोक्षाभिमुखता की आठवीं अवस्था) सुक्कज्झाणं= शुक्लध्यान को, पवन्नस्स= प्राप्त करके।

(135)

झाणानलेण= ध्यानरूपी अग्नि से, कम्मिंधणनिवहं= कर्मोरूपी ईंधन के समूह को, दुस्सहं= बड़ी कठिनाई से, दहंतस्स= जलाते हुए, तस्स= उस कूर्मापुत्र को, अणंतं= अनन्त (एवं) समुज्जलं= अत्यंत उज्ज्वल, केवलणाणं= केवलज्ञान, संजायं= उत्पन्न (हो गया)

(136)

ताव= तब, जइ= यदि, अहं= मैं, चरित्तं= चारित्रधर्म (मुनिधर्म) को, गहेमि= ग्रहण करता हूँ, ता= तो, सुअसोगविओगं= पुत्र के वियोग के शोक में, दुहिआणं= दुखित, मज्झ= मेरे, मायतायाणं= माता–पिता की, णूणं= निश्चय ही, मरणं= मृत्यु, हविज्ज= हो जाऐगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(137)

म्हा= इसलिए, केवलकमलाकलिओ= केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी से सुशोभित, स= वह, कुमरो= कूर्मापुत्र राजकुमार, निअमायतायउवरोहा= अपने माता–पिता के आग्रह से, भावचरित्तो= भाव चारित्र धर्म का (पालन करता हुआ), चिरं= बहुत समय तक, घरे= घर पर, च्चिअ = ही, चिट्ठइ= रहता है।

(138)

मायतायपयभत्तो= माता–पिता के चरणों की भक्ति करने वाले, कुम्मापुत्तसरिच्छो= कूर्मापुत्र के समान, को= कौन, पुत्तो= पुत्र (होगा), जो= जो, तयणुकंपाए = तप की अनुकम्पा से, केवली वि= केवलज्ञानी होकर भी, चिरं= दीर्घकाल तक, सघरे= अपने घर में, ठिओ= रहा हो।

(139)

कुम्मापुत्ता=कूर्मापुत्र (के अतिरिक्त), अन्नो=अन्य, को=कौन, धन्नो=धन्य है?, जो= जो, समायतायाणं=अपनी माता–पिता की, अणायवित्तीए= अज्ञातवृत्ति से (उन्हें), बोहत्थं=बोध या प्रतिबोध कराने के लिए, नाणी वि=केवलज्ञानी होने पर भी, घरे= घर में, ठिओ= स्थित रहा हो।

(140)

गिहवास= गृहस्थावस्था में, संठिअस्स= रहते हुए, वि= भी, कुम्मापुत्तस्स= कूर्मापुत्र को, जं = जो, अणंतं= अनन्त, केवलनाणं= केवलज्ञान, समुप्पन्नं= उत्पन्न हुआ, पुण= वास्तव में, तं= वह, भावस्स= शुद्धभाव का, दुल्ललिअं= प्रभाव था (इच्छा वाला था)

(141)

सुद्धंतमज्झं= अन्तःपुर में, अल्लीणो= रहने वाले (पुरुषों), तारिसं= के समान, आयंसघरनिविट्ठो= आदर्श घर में रहने वाले, सो=वे, भरहचक्की= भरतचक्रवर्ती, भावेण= शुद्ध भाव के द्वारा, गिही वि= गृहस्थावस्था में रहते हुए भी, केवली= केवलज्ञानी, जाओ= हो गए।

(142)

वंसग्गि= बाँस के अग्रभाग पर, समारूढो= आरूढ़, गिहिवेसो= गृहस्थावस्था में रहता हुआ, इलापुत्तो= इलापुत्र, के वि= किसी भी, मुणिपवरे= श्रेष्ठमुनि को (भिक्षा हेतु), विहरन्ते= विचरण करते हुए , दट्ठुं= देखकर, भावेणं= शुद्धभाव से, केवली= केवलज्ञानी, जाओ= हो गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(143)

भरहेसरपिक्खणं= भरतेश्वर नाटक को (करते हुए) देखकर, गिहिणो वि= गृहस्थावस्था में रहने पर भी, आसाढभूइमुणिणो= आषाढभूतिनामक मुनि को, भावेणं= शुद्ध भाव के कारण, केवलं= केवल, नाणं= ज्ञान, उप्पन्नं= उत्पन्न हो गया।

(144)

मेरुस्स= मेरुपर्वत का, य = और, सरिसवस्स= सरसों के वृक्ष का, जत्तियमित्तं= उनमें जितना, अंतरं= अंतर, होइ= होता है, तत्तियं= उतना (ही), अंतरं= अन्तर, दव्वत्थयभावत्थाण= द्रव्यपूजा और भावपूजा का, णेयं = जानो।

(145)

दव्वत्थयं= द्रव्यपूजा की, उक्कोसं= अत्यधिक, आराहिअ= आराधना, जाव=यदि, अच्चुअं= स्वर्ग (देवलोक), जाइ= ले जाती है (तो), भावत्थएण= भावपूजा से, अंतमुहुत्तेण= अन्तर्मुहूर्त्त से (उससे कुछ कम समय से), णिव्वाणं= निर्वाण को (मोक्ष को) पावइ= प्राप्त करते हैं।

(146)

अह= इस, मणुयखित्तमज्झे= मनुष्य क्षेत्र में, पंचेव= पाँच ही, महाविदेहा= महाविदेह, हवन्ति= होते है (उनमें), इक्किक्कम्मि= एक–एक में, विदेहे= विदेह में, बत्तीसबत्तीसं= बत्तीए–बत्तीस, विजया= विजय (होते हैं)।

(147)

बतीसपंचगुणिया= बत्तीस को पाँच से गुणा करने पर, सयं= एक सौ, सट्ठिं= साठ सहित, विजया= विजय, हविज्ज= होते हैं (उनमें), भरहे= भरत (और) एरवयक्खेत्तं= ऐरावत क्षेत्र को, जुअं= जोड़ने पर (5+5) सतरिसयं= एक सौ सत्तर, खित्ताणं= क्षेत्र, होइ= होते हैं।

(148)

तत्थ=वहाँ(प्रत्येक पवित्र क्षेत्र में एक), विहरंत=विचरण करते हुए, उक्कोसपए=अधिकाधिक, सतरिसयं= एक सौ सत्तर, जिणाण=जिन (तीर्थङ्करों) को, लब्भइ=प्राप्त होते हैं, इअ=इस तरह, पक्कंतं= प्रस्तुत (प्रकट), पासंगिअमुत्तं=प्रासंगिक(कथा) कही गई है, तं=उसे, निसामेह=सुनो।

(149)

तत्थ= वहाँ, महाविदेहे= महाविदेह क्षेत्र में, मंगलावईविजए = मंगलावती विजय में, धण–धन्न–अभिरामा = धनधान्य से युक्त सुन्दर, य =और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुपसिद्धे= सुप्रसिद्ध, रयणसंचयनामा= रत्नसंचय नाम की, नयरी= नगरी (थी)।

(150)

तीए = उस नगरी में, आइच्चो= सूर्य (के समान), तेअविजिओ= तेज को जीतने वाला, चउसठिसहस्सो= चौसठ हजार, रमणीरमणो= रमणियों (स्त्रियों) को रमण करने वाला, देवाइच्चो= वह देवादित्य, चक्कधरो= चक्रवर्ती, रज्जं= राज्य का, परिभुंजए = उपभोग करता था।

(151)

अण्णदिणे= किसी अन्य दिन, विहरंतो= विहार करते हुए, जगदुत्तम= जगत् में उत्तम, नामधेयं= नाम वाले, तित्थयरो= तीर्थंकर (भगवान् महावीर) वरतरुवरप्पहाणे= श्रेष्ठ, प्रधान वृक्षों वाले, तीसुज्जाणे= उसी उद्यान में, समोसरिओ= पधारे/आये।

(152)

वेमाणिअ= वैमानिकों, जोइसवणेहि= ज्योतिष्कों, व्यंतर (एवं) भवणेहि= भवनवासी देवों द्वारा, रयणं= रत्न, कणय= सोना (और), रूप्पमयं= चाँदी से युक्त, प्पागारतिगेण= इत्यादि तीन प्रकार के, रमणिज्जं=सुन्दर, समोसरणं= समवसरण को, विणिम्मियं= निर्मित किया (बनाया)।

(153)

दिणयरागमणं= सूर्य के आगमन से, संतुट्ठमणो= संतुष्टमन वाले, चक्को व्व= चकवा की तरह, जिणागमणं= जिन भगवान् के आगमन को, सोऊण= सुनकर, (संतुष्ट मन वाला), चक्की= वह चक्रवर्ती राजा, सपरिवारो समेओ= अपने परिवार के सहित, वंदणकए = वन्दना के लिए (गया)।

(154)

जिणंदं= जिनेन्द्र भगवान् की, आयाहिणं= दक्षिण पार्श्व से, तिक्खुत्तो= तीन बार, पयाहिणं= प्रदक्षिणापूर्वक, वंदिय = वन्दना, करिय = की (तथा), एस= इस प्रकार, कयंजली= हाथ जोड़कर, जहजुग्गम्मि= यथायोग्य, पएसे= स्थान पर, उवविट्ठो= बैठ गया।

(155)

तत्तो= तब, सो= वह, पहू= जिनेन्द्र भगवान्, भविअजणाणं= भव्य लोगों के लिए, सुहासमाणीइ= अमृत तुल्य, वाणीए = वाणी से, भवसायरं= संसार रूपी सागर को, तरणीए = पार करने के लिए, तारणिक्कं= एकमात्र जहाज रूपी, धम्मं= धर्म को, कहइ= कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(156)

भो भो= अरे! अरे!! , भविया= भव्यपुरुषों, सुणंतु= सुनो (यह), जीवो= जीव, निगोअमज्झओ= निगोद के मध्य से, निग्गंतूण= निकलकर, बहूएहिं= बहुत से, भवेहिं= भवों से, कहमवि= किसी तरह भी (बड़े प्रयत्न से), मणुयत्तं= मनुष्य भव को, लहइ= प्राप्त करता है।

(157)

मणुअत्ते= मनुष्य भव को, लद्धे= प्राप्त हो जाने पर, वि= भी, आयरिअं= आर्य, खित्तं= क्षेत्र को, दुलहं= बड़ी कठिनाई से, (दुर्लभपन से) पाविज्ज= प्राप्त किया जाता है (क्योंकि वहाँ), अणेगे= अनेक, दस्सुमिलक्खुयेसु= दस्यु एवं म्लेच्छ आदि, कुलेसु= कुलों में, उप्पज्जन्ति= उत्पन्न होना पड़ता है।

(158)

आरिएक्खित्ते=आर्यक्षेत्र में, पत्ते=जन्म लेने पर, वि=भी, पडुइंदियत्तणं=पूर्ण इन्द्रियों से युक्त होना(प्राप्त करना), दुलहं=दुर्लभ है(यहाँ संसार में) को वि=कोई भी, नरो=व्यक्ति, पाएण=प्रायः, रोगेण=रोग से, रहियतणू=रहित शरीर वाला, न दीसइ=दिखाई नहीं देता।

(159)

पडुतणत्ते= कुशल शरीर के, पत्ते= प्राप्त होने पर, वि= भी, जिणधम्मो= जिन धर्म को, सवणसंजोगो= सुनने का संयोग, दुलहो= दुर्लभ (कठिन) है, जेण= क्योंकि, गुरुगुणिणो= महानगुणवान, मुणिणो= मुनि (एवं) गुरू = गुरु, सव्वत्थ= सर्वत्र, न= नहीं, दीसन्ति= दिखाई देते हैं।

(160)

धम्मसवणे= धर्म श्रवण की, लद्धम्मि= प्राप्ति होने पर, रयणं= रत्न (के समान), जिणवयणं= जिन वचन पर, सद्दहणं= श्रद्धान करना, दुलहं= अत्यंत दुर्लभ है, जेण= क्योंकि, विसयकहं= विषय की कथाओं में, पसत्तमणो= आसक्त मन वाले, घणो= अनेक, जणो= व्यक्ति, दीसए = दिखाई देते हैं।

(161)

सद्दहणे= श्रद्धा के, संपत्ते= प्राप्त होने पर, (धर्म को) किरिआकरणं= आचरण में उतारना, सुदुल्लहं= अत्यंत दुर्लभ (कठिन), भणियं= कहा गया है, जेणं= क्योंकि, पमायसत्तू= प्रमादरूपी शत्रु, नरं=मनुष्य को (धर्माचरण) करंतं= करते हुए, वि=भी, वारेइ= रोकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(162)

यतः= क्योंकि, प्रमादः= प्रमाद, परमद्वेषी= परमद्वेष को (उत्पन्न करने वाला है), परमो= सबसे बड़ा, रिपुः= शत्रु है, प्रमादो= प्रमाद, मुक्तिपूर्दस्युः= मुक्ति को लूटने वाला है (मुक्ति–प्राप्ति में बाधक है), प्रमादो= प्रमाद, नरकायनम्= नरक का मार्ग है।

(163)

सयलसामग्गिं= समस्त सामग्री (जैसे मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, धर्म श्रवण और उस पर श्रद्धा), को, लहिऊण= प्राप्त करके, जं= जो, पमायं= प्रमाद को, चइअ= त्याग देते हैं, (तथा) चारित्तपालगा= चारित्र (मुनि) धर्म का पालन करते हैं, ते= वे, धण्णा= धन्य, (एवं), कयपुण्णा= पुण्यशाली (जीव) परमपयं= परमपद को, जन्ति= जाते हैं, (प्राप्त होते हैं)

(164)

इअ= इस प्रकार, जिणुवएसं= जिनेन्द्र भगवान् के उपदेशों को, सुणिय = सुनकर, भावेण= शुद्ध भाव से, के वि= किसी ने, सम्मतं= सम्यक्त्व को, के वि= किसी ने, चारितं= चारित्र धर्म (मुनिधर्म) को, (और) के वि= किसी ने, कयपुन्ना= पुण्यशाली ने, देसविरइं= देश विरति (अणुव्रत) को, पडिवन्ना= धारण किया।

(165)

इत्थन्तरे= इसके बाद, कमलाभमरद्दोणद्दुमजीवा= कमला, भ्रमर, द्रोण व द्रुमा के जीव, जे= जो, पुरा = पूर्व के , सुक्के= महाशुक्र नामक स्वर्ग में, गया= गये, ते=वे, (वहाँ से), चविय = च्युत होकर (आयु पूर्ण करके), भरहखित्ते= भरतक्षेत्र में, वेयड्ढे= वैताढ्य पर्वत पर, खेअरा= खेचर (विद्याधर), जाया = हुए।

(166)

चउरो वि= चारों ही (कमला, भ्रमर, द्रोण व द्रुमा), भुत्तभोगा= विषय सुखों का उपभोग करते हुए, चारणसमणंतिए =चारण मुनि के पास में, गहिअचरणा= चारित्र धर्म को ग्रहण किया, तत्थेव= वहीं पर, संपत्ता= पहुँचकर, जिणिंदं= जिनेन्द्र भगवान् को, अभिवंदिअ = अभिवादन करके, निविट्ठा= बैठ गए।

(167)

तं= उन्हें, दट्ठूणं= देखकर, चक्कधरो= चक्रवर्ती (देवादित्य), धम्मचक्किणं= धर्मचक्र के (प्रवर्तक), नाहं= स्वामी को, पुच्छइ= पूछता है, भयवं= हे भगवन्, सुमणा = शुद्ध मन वाले, चारणसमणा= चारणमुनि, केमि= कौन हैं (वे), कओ= कहाँ, पत्ता= प्राप्त होते हैं (रहते हैं)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(168)

ता= तब, जिणवरो= जिनवर (मुनि) पयंपइ= कहते हैं, नरिंद= हे राजन्, निसुणेहि= सुनो, एए = ये, चारणा= चारण मुनि, अम्ह= हमारी, नमणत्थं= वंदना के लिए, भारहाओ= भारत के, वेअड्ढो= वैताढ्य पर्वत पर, समागया= आए हुए हैं।

(169)

(वह) चक्कवट्टी= देवादित्य चक्रवर्ती, पुच्छेइ= पूछता है, भयवं= हे भगवन, भरहवासम्मि= भारत वर्ष के , वेअड्ढम्मि= वैताढ्य पर्वत पर, किं= क्या, को वि= कोई भी, संपइ= हुआ, अत्थि= है।

(170)

जिणो= भगवान् जिनेन्द्र देव, जंपइ= कहते हैं, भरहे= भारत वर्ष में (इस तरह के) नाणी= ज्ञानी, नरिदं= राजा, वा= अथवा, चक्की= चक्रवर्ती, न= नहीं, संपइ= हुए, किं पुण= किन्तु, कुम्मापुत्तो= कूर्मापुत्र, गिहवासे= गृहस्थावस्था में (भी), केवली= केवलज्ञानी, अत्थि= है (थे) ।

(171)

चक्कधरो= चक्रवर्ती, पडिपुच्छइ= पुनः पूछता है, भयवं= हे भगवन, किं= क्या, केवली= केवलज्ञानी, घरे = घर पर, वसइ= रहता है, पहू= भगवन, कहइ= कहते हैं, निअअम्मापिउस्स= अपने माता–पिता के, पडिबोहाय = प्रतिबोध के लिए, सो= वह केवली (घर पर), वसइ= रहता है।

(172)

ते= वे, चारणा= चारण मुनि, (आकाश में गमन करने की शक्ति वाले जैन मुनियों की एक जाति), भयवं= भगवान् को, पुच्छन्ति= पूछते हैं, अम्हाण= हम लोगों में (कोई) केवलं= केवलज्ञान को (प्राप्त), अत्थि= होगा, पहुणा= प्रभू के द्वारा, कहियं= कहा गया, तुब्भं पि= तुम सभी, अचिरेणं= शीघ्र ही, केवलं= केवलज्ञान को (प्राप्त), अत्थि= होंगे।

(173)

सामिय = हे स्वामी, अम्हाणं= हम सब , सिवगइगामिय = मोक्ष प्राप्त करने वाले, केवलं= केवलज्ञान को, कया= कब (प्राप्त), अत्थि= होंगे / करेंगे (तब), जगदुत्तमो= जगत् में उत्तम, नामजिणिंदो= नामवाले जिनेन्द्र भगवान्, इअ = इस प्रकार, कहिए = कहते हुए, समुद्दिसइ= व्याख्या / उपदेश (करते हैं)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(174)

जइआ= जिस समय, कुम्मापुत्तो= कूर्मापुत्र, सयं= स्वयं से, तुम्हाण= तुम सबको, महसुक्कं= महाशुक्र, मंदिरं= मंदिर नाम के स्वर्ग के (विषय में) कहं= कहेगा, तइआ= उस समय, चेव= ही, भो=हे महानुभाव (आपको), केवलं= केवलज्ञान, अत्थि= होगा।

(175)

इअ= इस प्रकार, सुणिअं= सुनकर, मुणिअतत्ता= तत्त्वों को जानने वाले, तिगुत्तिगुत्ता= तीनों गुप्तियों (मन, वचन व काय) से युक्त, जिणं= जिनेन्द्र भगवान् को, नमंसित्ता= नमस्कार करके, तस्स= उनके, समीवे= पास में, पत्ता= पहुँचे (वे सभी), चउरो= चारों (चतु) , तुसिणीआ= मौन होकर, चिट्ठन्ति= बैठ गए।

(176)

ताव= तब, ते= वे (चारण मुनि), तेण = उससे (चक्रवर्ती देवादित्य) से, वुत्ता=कहते हैं, भद्दा= हे महानुभाव, जिणेण= जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा, तुज्झं= आपको, समणुभूअं= अच्छी तरह अनुभव किए गए , महसुक्के= महाशुक्र नामक, मंदिरविमाणसुक्खं= मंदिर विमान के स्वर्ग के सुख को, नो= नहीं, कहिअं= कहा गया है।

(177)

इअ = इस प्रकार के, वयणसवणेण= वचनों को सुनकर, संजायजाइसरणेण= उत्पन्न जाति स्मरण से (तथा), पुव्वजम्मा= पूर्वजन्म के, संभरिया= स्मरण से, चउरो= चारों, चारणा= वे चारण मुनि, खवगस्सेणिं= क्षपक श्रेणी पर आरूढा= आरूढ़ हो गए।

(178)

अण0= अनन्तानुबन्धी(क्रोध,मान,माया,लोभ)मिच्छ=मिथ्यात्व, सम्मं= सम्यक्त्व मोहनीय, मीस=मिश्र मोहनीय, अट्ठ= आठ कषाय (क्रोध,मान,माया व लोभ अप्रत्याख्यान एवं क्रोध, मान, माया, लोभ प्रत्याख्यान), पुंसित्थिवेय=नपुंसकवेद, स्त्रीवेद एवं, पुमवेअं= पुरुषवेद, च=और, छक्क= छह (हास्य, रति, अरति, शोक, भय एवं जुगुप्सा) तथा, कोहाईए संजलणे= क्रोध आदि संज्वलन कषाय (इन 28 प्रकृतियों) को, खवेई=क्षय करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(179)

गइ=तिर्यन्च एवं नरक दो गतियाँ, आणुपुव्विं=तिर्यन्च आनुपूर्वी एवं नरकानुपूर्वी, चउरिंदी जाव=एकेन्द्रिय,द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय, चतुःइन्द्रिय पर्यन्त, जाईनामं =जाति व नामकर्म, आयावं=आतप, उज्जोअं=उद्योत, थावरनामं=स्थावर एवं, सुहुमं=सूक्ष्म, च=और

(180)

साहारणमपज्जत्तं=साधारण, अपर्याप्त, निद्दानिद्दं=निद्रानिद्रा, पयलपयलं=प्रचलाप्रचला, च=और, थीणं=स्त्यानगृद्धिं, च=तथा, अवसेसं= शेष, अट्ठण्हं=आठ कषाय(प्रत्याख्यान एवं अप्रत्याख्यान की आठ कषायें),खवेइ=क्षय करता है।

(181)

वीसमिऊण=विश्राम करके, नियट्टो=निवृत्ति, केवले=केवलज्ञान के, दो समएहि सेसे=दो समय शेष रहने पर, पढमे=सर्वप्रथम, निद्दं=निद्रा, पयलं=प्रचला, नामस्स=नामकर्म की, इमाउ पयडीओ=इन प्रकृतियों का (क्षय करता है)।

(182)

देवगइ=देवगति, आणुपुव्वी=देवानुपूर्वी, विउव्वि=वैक्रिय शरीर, पढमवज्जाइंसंघयण=प्रथम वज्रवृषभनाराच आदि पाँच संहनन, अन्नयरं= बाद में या दूसरे, संठाणं=संस्थान (पाँच संस्थान), तित्थयराहारनामं च= तीर्थङ्कर एवं आहारक नामकर्म।

(183)

चरमे=अन्त में, पंचविहं नाणावरणं=पाँच प्रकार के ज्ञानावरण कर्म (मति,श्रुत, अवधि,मनःपर्यय,केवलज्ञानावरण), चउविगप्पं दंसणं=चार प्रकार के दर्शनावरण(चक्षु,अचक्षु,अवधि,केवल) पंचविहमंतरायं=पाँच प्रकार के अंतराय कर्म(दान,लाभ,भोग,उपभोग एवं वीर्य) खवइत्ता=क्षय करके, केवली=केवली होइ=होते हैं।

(184)

इअ = इस प्रकार, खवगसेणिपत्ता= क्षपक श्रेणी को प्राप्त (वे), चउरो वि= चारों ही, समणा= श्रमण, केवली= केवलज्ञानी, जाया= हो गए, ते= वे, जिणंते= जिनेन्द्र भगवान् के पास में, गंतूण= जाकर, केवलिपरिसाइ= केवलज्ञानी की परिषद् (सभा) में, आसीणा= बैठ गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(185)

तत्थ= वहाँ पर, उवविट्ठो= बैठे हुए, इंदो= इंद्र (विद्याधरों के राजा), जगदुत्तमं= जगत् में श्रेष्ठ, जिणाधीसं= जिनेश्वर को, पुच्छइ= पूछता है, सामिअ = हे स्वामी, इमेहि= इन लोगों के द्वारा, तुब्भे= आपको, केण= किस, हेउणा= कारण से, न वंदिआ= वंदना नहीं की गई।

(186)

पहू =जिनेश्वर देव, कहइ= कहते हैं, एएसिं= यहाँ पर, कुम्मापुत्ताउ= कूर्मापुत्र को, केवलं= केवलज्ञान, जायं= होगा, एएण= उसी, कारणेणं= कारण से, एएहि= इनके द्वारा, अम्हे= हमारी, वंदिआ= वंदना, न= नहीं, (की गई है)

(187)

इंदो= इंद्रदेव, (विद्याधरों के राजा), पुणो= पुनः, पुच्छइ= पूछता है, (उस), महव्वई= महाव्रती को, एसो= ऐसा (केवलज्ञान), कइआ= कब, भावी= होगा, पहुणाइट्ठं= जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा गया, सत्तमदिणस्स= सातवें दिन के, तइअम्मि= तीसरे, पहरम्मि= पहर में (कूर्मापुत्र को केवलज्ञान होगा)

(188)

दिणयरो व्व= सूर्य के समान, महिअले=पृथ्वी तल पर, विहरंतो=विहार करने वाले, तमतिमिराणि=अज्ञान रूपी अंधकार को, हरंतो= नष्ट करते हुए, जयइ= विजयी (वे), जगदुत्तमजिणवरो= जगत् में उत्तम जिनेन्द्र भगवान्, इअ = इस प्रकार, कहिऊण= कहकर, निउत्तो= चले गए।

(189)

तत्तो= तब, महसत्तो= पराक्रमी, कुम्मापुत्तो= वह कूर्मापुत्र, गिहत्थवेसं= गृहस्थावेष को, विमुत्तु= छोड़कर, सविसेसं = विशेष प्रकार के, निज्जिअकिलेसं= क्लेशों / दुखों को नष्ट करने वाले, मुणिवरवेसं= श्रेष्ठ मुनिवेष को, गिण्हइ= ग्रहण करता है।

(190)

सुरविहिओ= देवताओं द्वारा निर्मित, अमले= निर्मल, कणयकमले= स्वर्ण विमान पर, आसीणो= बैठे हुए, समलेवरहिअनिअचित्तो= श्रम के लेप से रहित हृदयवाला, सो= वह (कूर्मापुत्र) केवलिपवरो= केवली के श्रेष्ठ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(191)

तथाहि= जैसे, धम्मस्स= धर्म के, दाणतवसीलभावणा= दान, तप, शील, भावना, चउरो= चार, भेआ= भेद, हवन्ति= होते हैं, तेसु वि= उनमें भी, भावो= भाव धर्म , परमो= श्रेष्ठ है, (और) असुहकम्माणं= अशुभ कर्मों के लिए, परमोसहं= श्रेष्ठ औषधि (है)

(192)

जहेव= जिस प्रकार, दाणाणं= दानों में, अभयदाणं= अभयदान, नाणाण= ज्ञानों में, केवलं नाणं= केवलज्ञान (और), झाणाण= ध्यानों में, सुक्कझाणं= शुक्ल ध्यान (श्रेष्ठ है) तह= उसी प्रकार, सव्वधम्मेसु= सभी धर्मों में, भावो= भाव धर्म (श्रेष्ठ है)।

(193)

जहा= जैसे, कम्माण= कर्मो में, मोहणिज्जं= मोहनीय कर्म, सव्वेसु= सभी, इंदिएसु= इन्द्रियों में, रसणा= रसना इन्द्रिय (तथा), वएसु= महाव्रतों में, बंभव्वयं= ब्रह्मचर्यव्रत (प्रमुख है) तह= वैसे ही, सव्वधम्मेसु= सभी धर्मों में, भावो= भाव धर्म (प्रमुख है)।

(194)

गिहवासे वि= गृहस्थावस्था में भी, वसंता= रहते हुए, भव्वा= भव्य पुरुष, मणहरेणं= मनोहर, भावेण= शुद्ध भाव से, केवलं नाणं= केवलज्ञान को, पावन्ति= प्राप्त कर लेते हैं, इत्थ= इसके लिए, अम्हे= हमारा (मेरा), उदाहरणं= उदाहरण(है)।

(195)

इअ = इस प्रकार के, देसणं= उपदेश को, सुणित्ता= सुनते हुए, अवगयतत्ता= तत्त्वों के जानकार, वरसत्ता= महापराक्रमी, मायपिअरो= माता--पितारूप मुनि, परिपालियचारित्ता= चारित्र धर्म का पालन करते हुए, सुग्गइं= सद्गति (मोक्ष) को, पत्ता= प्राप्त हुए।

(196)

अन्ने वि= दूसरे भी, बहुअभविया= बहुत से भव्य लोगों ने, केवलिस्स= केवली के, वयणाइं= वचनों को, आयण्णिय = सुनकर, सम्मत्तं= सम्यग्दर्शन, च= और, चरित्तं= सम्यक् चारित्र, च= तथा, देसचरित्तं= देश विरति नामक अणुव्रत को, पडिवन्ना= स्वीकार / ग्रहण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(197)

इअ = इस प्रकार, बहुअनरो= अनेक व्यक्तियों को, बोहिओ= समझाते हुए केवलिप्पवरो= श्रेष्ठ केवली, स= वह, कुम्मापुत्तो= कूर्मापुत्र, सुचिरं= दीर्घकाल तक, केवलिपरियायं= केवली की अवस्था को, पालिऊण= पूर्ण करके, सिवं= मोक्ष को, पत्तो= प्राप्त हुआ।

(198)

जो= जो, भविओ= भव्यपुरुष, वेरग्गकरं= वैराग्य को उत्पन्न करने वाले, कुम्मापुत्तचरित्तं= कूर्मापुत्र के चरित्र को, सुणेइ= सुनता है, सो= वह, सव्वपावरहिओ= समस्त पापों से रहित, अणंतसुहभायणं= अनंतसुख देने वाले भाव धर्म को, वहइ= धारण करता है।

(199)

सिरिहेमविमलो= श्री हेमविमल के, सुहगुरु = शुभ (मंगलमय) आचार्य, सिरिजिणमाणिक्कसीसरइएणं= श्री जिनमाणिक्य के शिष्य (अनन्तहंस) द्वारा, एअं= यह , पगरणं= प्रकरण, रइअ= रचा गया, वाइज्जंतं= वांचे जाते हुए, चिरं= अनंतसमय तक, जयउ= जय हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथानुक्रमणिका

1. अज्ज अहं सुरभवणं सुमिणम्मि ।।103।।
2. अज्ज मए अंजुमए चिरेण ।।30।।
3. अज्जं चिअ मज्झ मणोमणोरहो ।।31।।
4. अण॰ मिच्छ मीस सम्मं अट्ठ ।।178।।
5. अण्णदिणे विहरंतो जगदुत्तमनाम ।।151।।
6. अण्णदिणे सा देवी निअसयणिज्जम्मि ।।101।।
7. अण्णदिणम्मि मुणीसरगुणिज्जमाणं ।।133।।
8. अण्णदिणे गामाणुग्गामं विहरन्तओ।।48।।
9. अण्णदिणे तस्स पुरस्सुज्जाणे।।14।।
10. अण्णेवि बहुअभविआ ।।196।।
11. अम्मापिऊहि तस्स य ।।124।।
12. अह अन्नया विचिंतइ सो ।।77।।
13. अह केवली वि सव्वेसिं ।।72।।
14. अह जक्खिणी अवहिणा ।।49।।
15. अह तस्सम्मापियरो पुत्तविओगेण ।।37।।
16. अह तेहि दुक्खिएहिं ।।39।।
17. अह मणुयखित्तमज्झे ।।146।।
18. आउखए इत्थ वणे भद्दमुही ।।18।।
19. आरिए खित्ते वि हु पत्ते ।।158।।
20. आसाढभूइमुणिणो भरहेसरपिक्खणं ।।143।।
21. इअ अवलोअंतस्स य ।।88।।
22. इच्चाइयरयणाणं लक्खण ।।76।।
23. इअ कहिऊण निउत्तो ।।188।।
24. इअ केवलिवयणाइं सुणिउं ।।54।।
25. इअ खवगसेणिपत्ता ।। 184।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

26. इअ चिंतिऊण चिंतारयणं ।।87।।
27. इअ देसणं सुणित्ता अवगयतत्ता ।।195।।
28. इअ देसणं सुणेउं सम्मत्तं ।।92।।
29. इअ नरवइणो वयणं ।।106।।
30. इअ बोहिअबहुअनरो कुम्मापुत्तो ।।197।।
31. इअ मुणिवरवयणाइं सुणिउं ।।120।।
32. इअरेसि दंसणीण य धम्मं ।।113।।
33. इअ वयणसवणसंजायजाइसरणेण ।।177।।
34. इअ वयणं सोऊणं वयणं ।।32।।
35. इअ सुणिय जिणुवएसं ।।164।।
36. इअ सुणिअं मुणिअतत्ता ।।175।।
37. इअ सुणिअ सो कुमारो ।।67।।
38. इअ सुणिय हट्ठतुट्ठो राया ।।104।।
39. इअ संदेहाकुलिअं कुमरं ।।29।।
40. इअ संबंधं सुणिउं संविग्गा ।।46।।
41. उक्कोसं दव्वत्थयमाराहिअ ।।145।।
42. उक्कोसपए लब्भइ विहरंत जिणाण ।।148।।
43. उल्लावणेण कुम्मापुत्तु त्ति ।।125।।
44. एएण कारणेणं नाह अहं ।।60।।
45. एगम्मि नयरपवरे अत्थि ।।74।।
46. एयमवलोइऊण सुरभवणं ।।27।।
47. कत्थ वि एसा दिट्ठा ।।33।।
48. कमलाभमरद्दोणद्दुमजीवा ।।165।।
49. कम्माण मोहणिज्जं रसणा सव्वेसु ।।193।।
50. कयआसीसपदाणा नरवइणा ।।112।।
51. कहइ पहू एएसिं कुम्मापुत्ताउ ।।186।।
52. किं इंदजालमेअं एअं ।।28।।
53. किं केण वि दूहविआ किं वा ।।56।।
54. कुमरो अम्मापियरो तिण्णि वि ।।94।।
55. कुमरो जंपइ जक्खिणी ।।61।।
56. कुमरो वि अयाणन्तो ।।65।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

57. कुम्मापुत्ता अन्नो को धन्नो ।।139।।
58. कुम्मापुत्तचरित्तं वेरग्गकरं ।।198।।
59. कुम्मापुत्तसरिच्छो को पुत्तो ।।138।।
60. केण वि भणियं वच्चसु वहणे ।।79।।
61. केवलकमलाकलियं संसयहरणं ।।16।।
62. गइआणुपुव्वि दो दो जाईनामं ।।179।।
63. गब्भस्सणुभावेणं धम्मागमसवण।।109।।
64. गिहवास संठिअस्स वि ।।140।।
65. गिहवासे वि वसंता भव्वा ।।194।।
66. गोयमं जं मे पुच्छसि ।।8।।
67. चउरो वि भुत्तभोगा चारणसमणंतिए ।।166।।
68. चंचलं सुरचाउ व्व ।।59।।
69. चक्कधरो पडिपुच्छइ भयवं ।।171।।
70. चत्तारिपंच जोयणसयाइं ।।42।।
71. चरमे नाणावरणं पंचविहं ।। 183।।
72. छज्जीवनिकायदया ।।119।।
73. छज्जीव निकायाणं परिपालण।।117।।
74. जइ ताव चरित्तं महं गहेमि।।136।।
75. जइ ताव तुच्झ चितं।।22।।
76. जइ मज्झुवरि सिणेहं ।।62।।
77. जइआ कुम्मापुत्तो ।।174।।
78. जं तेण पुव्वजम्मे सुचिरं ।।132।।
79. जंपइ जिणो न संपइ ।।170।।
80. जम्बुद्दीवं छत्तं मेरुं ।।52।।
81. जम्बुद्दीवे दीवे भारहखित्तस्स ।।9।।
82. जलनिहिमज्झे पडिओ बहु ।।89।।
83. जह वच्छो निअसुरभिं ।।68।।
84. जाईसरणगुणेणं संसारासारयं ।।134।।
85. जाइसरणेण तेणं नाऊणं ।।34।।
86. जाए पभायसमए सयणिज्जा ।।102।।
87. जो भविओ मणुअभवं ।।73।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

88. झाणानलेण कम्मिंधणनिवहं ।।135।।
89. ण्हाया कयबलिकम्मा ।।111।।
90. तं कण्णं अणुधावइ ।।23।।
91. तं चंदं दट्ठूणं निअचित्ते ।।86।।
92. तं दट्ठूणां पुच्छइ चक्कधरो ।।167।।
93. तं निसुणिअ भद्दमुही नाम ।।20।।
94. तत्तो कुम्मापुत्तो गिहत्थवेसं ।।189।।
95. तत्तो नियसत्तीए असुभाणं ।।35।।
96. तत्तो भविअजणाणं भवसायर ।।155।।
97. तत्तो सो तस्स कए खणेइ ।।78।।
98. तत्थुज्जाणे जक्खिणी भद्दमुही ।।15।।
99. तथुउवविट्ठो इंदो पुच्छइ ।।185।।
100. तत्थ निविट्ठो वीरो कणयसरीरो ।।4।।
101. तत्थ य कुमार जीवो ।।107।।
102. तत्थ य दोणनरिंदो पयाव ।।10।।
103. तत्थ य महाविदेहे सुपसिद्धे ।।149।।
104. तत्थ य महिंदसीहो राया ।।98।।
105. तत्थिमं पढमं ठाणं ।।118।।
106. तम्हा केवलकमलाकलिओ ।।137।।
107. तस्स नरिन्दस्स दुमा नामेणं ।।11।।
108. तस्स य कुम्मादेवी देवी ।।99।।
109. तह मणुयत्तं बहुविहभवभमण ।।90।।
110. तत जिणवरो पयंपइ नरिंद ।।168।।
111. तारुण्णे सव्वेसिं विसयविगारा ।।130।।
112. तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं ।।154।।
113. तित्थयरा य गणधरा ।।51।।
114. तिहां वज्जइ तूर सुतडयडंत ।।122।।
115. तीए देवाइच्चो चक्कधरो ।।150।।
116. ते केवलिवयणेणं अईव ।।41।।
117. ते ताव तेण वुत्ता भद्दा ।।176।।
118. ते धन्ना कयपुण्णा जे जिण ।।91।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

119. ते धन्ना कयपुण्णा जे णं ।।163।।
120. ते केवलि पयंपइ सुणेह ।।40।।
121. तउ केवलिणा कहिअं ।।44।।
122. तो तत्थ रयणदीवे संपत्तो ।।80।।
123. तो तीइ ससत्तीए ।।63।।
124. तो तेणं नरवइणा छद्दंसणनाइणो ।।110।।
125. तो नरवइणाहूया जिणसासणसूरिणो।।116।।
126. थेराणं पयमूले ।।93।।
127. दट्ठूण तं कुमारं बहुकुमर ।।21।।
128. दत्तं चिंतारयणं तो तीए ।।84।।
129. ददातु दानं विदधातु मौनं ।114।
130 दाणतवसीलभावणभेएहि ।।5।।
131. दाणतवसीलभावणभेआ ।। 191।।
132. दाणाणभयदाणं नाणाण ।। 192।।
133. दिट्ठा सा कुमरेणं पुट्ठा ।। 55।।
134. दुक्करतक्चरणपरा परायणा ।। 47।।
135. दुल्लभणामकुमारो सुकुमारो।। 12।।
136. देवगइआणुपुव्वी विउव्वि ।। 182।।
137. देवि तुमं पडिपुण्णे नवमासे ।। 105।।
138. देवी भणेइ भो भो नत्थि तुहं ।। 82।।
139. देवेहिं अवहरिअं नरेहि ।। 38।।
140. देवेहि समवसरणं विहिअं ।। 3।।
141. नमिऊण वद्धमाणं असुरिदं ।। 1।।
142. न सा दीक्षा न सा भिक्षा, ।। 115।।
143. नियमायतायदंसणसमुल्लसंतप्पमोअभरभरिअं ।। 71।।
144. नियमायतायमुणिणं कंठम्मि ।। 69।।
145. निअवत्थअंचलेणं कुमारनयणाणि ।। 70।।
146. निरुवमरूवगुणेणं तरुणीजणमाणसाणि ।। 129।।
147. नो विद्या न च भेशजं न च ।।53।।
148. पंचसु जिणकल्लाणेसु चेव ।।43।।
149. पडिपुण्णेसु दिणेसुं तत्तो ।।121।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

150. पत्ते वि पडुतणत्ते दुलहो ।।159।।
151. पुच्छइ पुणो वि इंदो कइआ ।।187।।
152. पुच्छन्ति चारणा ते भयवं ।।172।।
153. पुच्छेइ चक्कवट्टी भयवं ।।169।।
154. पुत्तस्स सिणेहेणं चिरेण ।।64।।
155. पुव्वभवंतरकयचेडबंधणुच्छालणाइकम्मवसा।।128।।
156. पुव्वभवंतरभज्जा लज्जाइ ।।36।।
157. पोअपएसनिविट्टो वणिओ ।।85।।
158. प्रमादः परमद्वेशी प्रमादः ।।162।।
159. बत्तीसपंचगुणिया विजया उ ।।147।।
160. बहुसालवडस्स अहेपहेण ।।24।।
161. बावत्तरिं कलाओ सयमेव ।।127।।
162. विरुदावलि बोल्लइ बंदिवष्द ।।123।।
163. भद्दे निसुणसु नयरे इत्थेव ।।19।।
164. भमरनरिंदो कमलादेवी य ।।96।।
165. भयवं कया वि होही ।।45।।
166. भयवं जावियमप्पं कहमवि ।।50।।
167. भयवं पुव्वभवे हं माणवई ।।17।।
168. भावेण कुम्मापुत्तो अवगयतत्तो ।।7।।
169. भावेण भरहचक्की ।।141।।
170. भावो भवुदहितरणी भावो ।।6।।
171. भो भद्द केण कज्जेण अज्ज ।।81।।
172. भो भो सुणंतु भविआ ।।156।।
173. मणिमयखम्भअहिट्ठिअपुत्तलिया ।।26।।
174. मणुअत्ते वि हु लद्धे दुलहं ।।157।।
175. मेरुस्स सरिसवस्स य ।।144।।
176. रयणमयखम्भपंतीकंती।।25।।
177. रयणेण रयणखाणी जहेव ।।108।।
178. रायगिहे वरनयरे नयरेहापत्तसयल ।।2।।
179. रायगिहं वरनयरं ।।97।।
180. लद्धम्मि धम्मसवणे दुलहं ।।160।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

181. वंसग्गिसमारूढो मुणिपवरे ।।142।।
182. विसयसुहं भुंजंताण ताण ।।100।।
183. वीसमिऊण निअट्ठो दोहिं ।।181।।
184. वेमाणिअजोइसवरभवणेहि ।।152।।
185. स भणइ जह मह कम्मं ।।83।।
186. सद्दहणे संपत्ते किरिआकरणं ।।161।।
187. सा किंचि वि अकहंती ।।57।।
188. सा जक्खिणी वि चविउं वेसालिए।।95।।
189. सामिय मए अवहिणा ।।58।।
190. सामिय सिवगइगामिय ।।173।।
191. साहारणमपज्जत्तं निद्दानिद्दं ।।180।।
192. सिरिहेमविमलसुहगुरुसिरि ।। 199।।
193. सुरविहिअ कणयकमले अमले ।।190।।
194. सोऊण जिणागमणं चक्की ।।153।।
195. सो कुमरो नियजुव्वणराजमएणं ।।13।।
196. सोगंधियकक्केयणमरगयगोमेय।।75।।
197. सो पंचहि धाईहिं हत्था ।।126।।
198. सो पुच्छइ केवलिणं पहु ।।66।।
199. हरिहरबंभाइसुरा विसएहि ।।131।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट "ब"

ग्रन्थ में उद्धृत पात्रों की सम्बद्ध कथाएँ

भरत को कैवल्य की प्राप्ति

भगवान् के निर्वाण के पश्चात् भरत अयोध्या आ गया। कुछ समय बाद वह शोक से मुक्त हो गया और पाँच लाख पूर्व तक भोग–भोगता रहा। एक बार वह सभी अलंकरों से विभूषित होकर अपने आदर्शगृह में गया। वहाँ एक काँच में सर्वाङ्ग पुरुष का प्रतिबिम्ब दिखता था। उसमें वह स्वयं का प्रतिबिम्ब देख रहा था। इतने में ही उसकी अंगूठी नीचे गिर पड़ी। उसको ज्ञात नहीं हुआ। वह अपने पूरे शरीर का निरीक्षण कर रहा था। इतने में ही उसकी दृष्टि अंगुली पर पड़ी। उसे वह असुन्दर लगी। तब उसने अपना कंकण भी निकाल दिया। इस प्रकार वह एक–एक कर सारे आभूषण निकालता गया। सारा शरीर आभूषण रहित हो गया। उसे पद्मविकल पद्मसरोवर की भांति अपना शरीर अशोभायमान लगा। उसके मन में संवेग उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा– 'आगंतुक पदार्थों से विभूषित मेरा शरीर सुन्दर लगता था पर वह स्वाभाविक रूप से सुन्दर नहीं है।' इस प्रकार चिन्तन करते हुए अपूर्वकरणध्यान में उपस्थित भरत को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। देवराज शक्र ने आकर कहा– 'आप द्रव्यलिंग धारण करें, जिससे हम आपका निष्क्रमण महोत्सव कर सकें।' तब भरत ने पंचमुष्टि लुंचन किया। देवता ने रजोहरण, पात्र आदि उपकरण प्रस्तुत किए। महाराज भरत दस हजार राजाओं के साथ प्रव्रजित हो गये। शेष नौ चक्रवर्ती हजार–हजार राजाओं सहित प्रव्रजित हुए। शक्र ने भरत की वन्दना की । भरत एक लाख पूर्व तक केवली–पर्याय का पालन कर मासिक संलेखना में श्रवण नक्षत्र में अष्टापद पर्वत पर परिनिर्वृत हो गया। भरत के बाद इन्द्र ने आदित्ययश का अभिषेक किया। इस प्रकार एक के बाद एक आठ पुरुषयुग अभिषिक्त हुए। उसके बाद के राजा उस मुकुट को धारण करने में समर्थ नहीं हुए।

इलापुत्र की कथा

(असत्कार से सामायिक की प्राप्ति)

एक ब्राह्मण मुनियों के पास धर्म सुन–सुनकर अपनी पत्नी के साथ प्रव्रजित हो गया। वह उग्र संयम का पालन करने लगा, परन्तु दोनों की पारस्परिक प्रीति नहीं छूटी "मैं ब्राह्मणी हूँ" इस प्रकार वह साध्वी गर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करती थी। दोनों मरकर देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ दोनों अपना आयुष्य भोगकर च्युत हुए।

इलावर्द्धननगर में इला देवता का मंदिर था। उस देवता की पूजा एक सार्थवाही पुत्र–प्राप्ति की कामना से करती थी। देवलोक से च्युत होकर वह ब्राह्मण साधु का जीव उसी के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम इलापुत्र रखा गया। उस ब्राह्मणी का जीव गर्व दोष के कारण एक नटनी की कोख से पुत्री के रूप में उत्पन्न हुआ। दोनों ने यौवन में पदार्पण किया। एक दिन इलापुत्र ने उस नट–पुत्री को देखा। पूर्व जन्म के अनुराग से वह उसमें आसक्त हो गया। इलापुत्र ने उसकी माँग की और कहा मैं इसको प्राप्त करने के लिए इसके वजन जितना स्वर्ण देने को तैयार हूँ। परन्तु नट–पिता ने यह कहते हुए इन्कार कर दिया कि यह लड़की हमारी अक्षय निधि है। यदि तुम हमारी नटविद्या सीख लो और हमारे साथ घूमते रहो तो यह तुम्हें प्राप्त हो सकती है। इलापुत्र इसके साथ घूमने लगा। उसने नटविद्याएँ सीख लीं।

एक बार राजा ने विवाह के निमित्त नट–मण्डली को अपने करतब दिखाने के लिए कहा। वे वेन्यातट पर गए। राजा ने अपने अंतःपुर के साथ नटों के करतब देखे। इलापुत्र करतब दिखा रहा था। राजा की दृष्टि उसी नट कन्या पर टिकी हुई थी। उसने पूरा करतब देखा ही नहीं। खेल का एक भाग सम्पन्न हुआ। राजा ने नटों को कुछ भी दान नहीं दिया। उसके न देने पर दूसरों ने भी अपने हाथ खींच लिए। सारी जनता नटों के करतब देखकर साधुवाद, साधुवाद की आवाज करने लगी। राजा ने नट से कहा–'ऊपर चढ़ो और पुनः करतब दिखाओ।' वहाँ वंश के अग्रभाग पर तिरछा काष्ट रखा गया। उसमें दो कीलिकाएँ थीं। नट पादुकाएँ पहनकर हाथ में असिखेटक लेकर ऊपर चढ़ा। उन कीलिकाओं का पादुका की नलिकाओं से प्रवेश हो सकता था। वे पादुकाएं सात आगे तथा पाँच पीछे आविद्ध थीं। राजा ने सोचा– यदि यह वहाँ से स्खलित होकर नीचे गिर पड़ेगा तो शरीर के सैकड़ों खंड हो जाएंगे। इलापुत्र ने वह करतब भी सफलता पूर्वक कर डाला। राजा अब भी उसी नट पुत्री की ओर देख रहा था। लोगों ने जय–जयकार किया फिर भी राजा की आँखें नहीं खुली। राजा ने नट मंडली को कुछ नहीं दिया और न ही ध्यान से नाटक देखा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा तो बस यही सोचा रहा था कि यदि यह नट इलापुत्र मर जाये तो इस नट पुत्री के साथ विवाह कर लूँ। राजा से पूछने पर वह कहने लगा– 'मैंने करतब देखा ही नहीं, पुनः करो।' इलापुत्र ने पुनः किया। राजा ने फिर भी नहीं देखा। तीसरी बार करने पर भी नहीं देखा। चौथी बार इलापुत्र से कहा– 'पुनः करो।' सारी जनता विरक्त हो गई। इलापुत्र चौथी बार चढ़ा और बांस के अग्रभाग पर स्थिर होकर सोचने लगा–'भोगों को धिक्कार है। यह राजा इतनी रानियों से भी तृप्त नहीं हुआ और इस नटनी को अपना बनाना चाहता है।' इस नटपुत्री को प्राप्त करने के लिए मुझे मारना चाहता है।' यह सोचते–सोचते उसकी दृष्टि एक श्रेष्ठिगृह में सर्वालंकार भूषित स्त्रियों की ओर गई, जो एक मुनि को भिक्षा देने के लिए प्रवृत्त थीं। वे स्त्रियाँ सर्वाङ्ग सुन्दर थीं, परन्तु मुनि अत्यंत विरक्त भाव से नीचे दृष्टि किये हुए थे। इलापुत्र ने मन ही मन में सोचा– 'अहो! ये साधु धन्य हैं, जो विषयों से निस्पृह है। मैं श्रेष्ठिपुत्र हूँ, अपने परिजनों को छोड़कर यहाँ आया हूँ। यहाँ भी मेरी स्थिति ऐसी है, उसके परिणाम श्रेष्ठ होते गये और उसी अवस्था में उसे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

उस नटपुत्री को भी वैराग्य हुआ। अग्रमहिषी और राजा के मन में भी विशुद्ध भाव उमड़े और सभी कैवल्य को प्राप्त कर सिद्ध हो गए।

आषाढभूति की कथा

आषाढभूति राजगृहाधिपति सिंहरथ का सुपुत्र था। एक बार धर्मघोष से उपदेश सुनकर विरक्त हो उसने दीक्षा ले ली। लेकिन रसयुक्त अन्न पर लोलुप होने से और विश्वकर्मा नट की दो सुन्दर कन्याओं का सौन्दर्य देखकर उसने मुनिवेष छोड़ दिया और उनके साथ संसार करने लगा। वह नटविद्या में पारंगत हो गया। एक समय उसकी स्त्रियाँ मद्यमांस के सेवन से उन्मत्त देखकर वह फिर संसार से विरक्त हो गया। अपनी स्त्रियों के निर्वाह के लिए धन कमाने की विनती करने पर वह राजा को भरतेश्वर के जीवन पर नाटक दिखाने लगा। भरतेश्वर की भूमिका को लेकर आरसेमहल में श्रृंगार करते समय उसके द्वारा एक अंगुली से मुद्रिका नीचे गिर गयी। उस श्रीहीन अंगुली को देखकर संसार की असारता पर चिन्तन करते समय शुद्ध भाव से उसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिरिक्त गाथाएँ

(भण्डारकर प्राच्यविद्या शोध–संस्थान, पूना की प्रति में 62 वीं गाथा के बाद प्राप्त अतिरिक्त 8 गाथाएँ)

अथिराण चंचलाण य खणमित्तसुहंकराण।
दुग्गहनिबंधणाणं विरमसु एयाण पावाणं ।। 1 ।।

जललवतरलं जीयं अथिरा लच्छी वि भंगुरो देहो।
तुच्छा य कामभोगा निबंधणं दुक्खलक्खाणं ।। 2 ।।

नागो जहा पंकजलावसन्नो दट्ठुं थलं नाभिसमेइ तीरं।
एयं जीया कामगुणेसु गिद्धा सुधम्ममग्गे नरया हवंति ।। 3 ।।

जह विट्ठपुंजखित्तो किमी सुहं मन्नए सयाकालं।
तह विसयाइसु रत्तो जीवो वि सुहं मुणइ मूढो ।। 4 ।।

पत्ता सुकामभोगा सुरेसु असुरेसु तह य मणुएसु।
न य जीव तुज्झ तित्ती जलणस्स व कट्ठनियरेण ।। 5 ।।

जहा य किंपागफला मणोरमा,
रसेण वण्णेण य भुंजमाणा।
ते खुब्भए जीवियं पच्चमाणा,
एवं गुणा कामगुणा विवागे ।। 6 ।।

जह निंबसमुप्पन्नो कीडो कडुयं पि मन्नए महुरं ।
तह सिद्धिसुहपरोक्खा संसारे दुहं सुहं बिंति ।। 7 ।।

विसमिव मुहम्मि महुरा परिणामनिकामदारुणा विसया।
कालमणंतं भुत्ता अज्ज वि मोत्तुं न किं जुत्ता ।। 8 ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव द्वारा क्षय की जाने वाली प्रकृतियों का विवरण

भद्रबाहुकृत आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार

111. अण–मिच्छ–मीस, सम्मं, अट्ठ नपुंसित्थिवेदछक्कं च।
पुंवेयं च खवेती, कोहाईए य संजलणे ।।

111/1. गति आणुपुव्वि दो दो, जातीनामं च जाव चउरिंदी ।
आयावं उज्जोयं, थावरनामं च सुहुमं च।।

111/2. साहारमपज्जत्तं, निद्दानिद्दं च पयलपयलं च।
थीणं खवेति ताहे, अवसेसं जं च अट्ठण्हं।।

111/3. वीसमिऊण नियंठो, दोहि उ समएहि केवले सेसे ।
पढमे निद्दं पयलं, नामस्स इमाओ पगडीओ।।

111/4. देवगति आणुपुव्वी विउव्वि संघयण पढमवज्जाइं।
अन्नतरं संठाणं, तित्थयराहारनामं च ।।

111/5. चरमे नाणावरणं, पंचविहं दंसणं चउविगप्पं।
पंचविहमंतरायं, खवइत्ता केवली होति।।

अर्थ :– क्षपकश्रेणी में क्षय का क्रम इस प्रकार है– अनन्तानुबंधी चतुष्क, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व इसके पश्चात् अप्रत्याख्यानावरण– प्रत्याख्यानावरण–इस कषाय अष्टक का युगपद् क्षय प्रारम्भ हो जाता है। इन आठ प्रकृतियों के क्षयकाल के बीच में इन सत्रह कर्म– प्रकृतियों का क्षय होता है–

1. नरकगतिनाम
2. नरकानुपूर्वीनाम
3. तिर्यग्गतिनाम
4. तिर्यगानुपूर्वीनाम
5. एकेन्द्रियजातिनाम
10. उद्योतनाम
11. स्थावरनाम
12. सूक्ष्मनाम
13. साधारणवनस्पतिनाम
14. अपर्याप्तकनाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. द्वीन्द्रियजातिनाम
7. त्रीन्द्रियजातिनाम
8. चतुरिन्द्रियजातिनाम
9. आतपनाम
15. निद्रानिद्रा
16. प्रचला–प्रचला
17. स्त्यानर्द्धि

तत्पश्चात् अप्रत्याख्यानावरण आदि कषाय की अवशिष्ट आठ प्रकृतियों का क्षय करता है। (यह सारा अन्तर्मुहूर्त्त काल में संपन्न हो जाता है। फिर नपुंसक वेद, स्त्री वेद, हास्यादिषट्क और पुरुषवेद तथा संज्वलन कषाय आदि का क्षय होता है। श्रेणी की समाप्ति का काल भी अन्तर्मुहूर्त्त का ही होता है।अन्तर्मुहूर्त्त के असंख्येय भाग होते हैं। जब चरम लोभाणु का क्षय हो जाता है, तब यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है)।। :–111–111/2

अर्थ :– तत्पश्चात् क्षपकश्रेणी प्राप्त निर्ग्रन्थ कुछ विश्राम करता है और जब छद्मस्थ वीतरागत्व के दो समय शेष रहते हैं तब वह पहले निद्रा फिर क्रमशः प्रचला, देवगतिनाम, देवगतिआनुपूर्वीनाम, वैक्रियनाम, प्रथम संहनन के अतिरिक्त शेष पाँच संहनन, प्राप्त संस्थान के अतिरिक्त शेष पाँच संस्थान, तीर्थंकर नाम तथा आहारकनामकर्म का क्षय करता है (यदि प्रतिपत्ता तीर्थंकर हो तो वह केवल आहारकनामकर्म का क्षय करता है)।। :–111/3–4

अर्थ :– चरम समय में ज्ञानावरणपंचक, चतुर्विध दर्शनावरण तथा पाँच प्रकार के अंतरायकर्म का क्षय कर वह केवली होता है।। :–111/5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

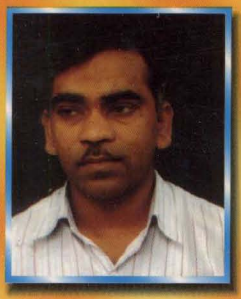

डॉ. जिनेन्द्र जैन

जन्म–तिथि :	14 जून, 1962
जन्म–स्थान :	सिहुँड़ी (कटनी, म.प्र.)
शिक्षा :	एम.ए. (प्राकृत), पी–एच.डी. (जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर)
कार्यक्षेत्र :	सितम्बर, 1989 से अगस्त, 1991 तक जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में यू. जी. सी. जे. आर. एफ. के रूप में स्नातक स्तरीय अध्यापन एवं शोध–कार्य। सितम्बर, 1991 से निरन्तर जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं के प्राकृत एवं जैनागम विभाग में सहायक आचार्य के रूप में स्नातकोत्तर स्तरीय अध्यापन।
प्रकाशन :	(क) लगभग 40 शोध निबन्धों एवं आलेखों का विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशन। (ख) ग्रंथ – (1) तेरापंथ का राजस्थानी को अवदान (सम्पादित)1993 (2) जैन काव्यों का दार्शनिक मूल्यांकन, 2001 (3) आराधना प्रकरण, 2002 (4) पाहुड – जैनविद्या एवं बौद्ध अध्ययन के आयाम (सम्पादित), 2002 (5) सीप के मोती –पूर्वार्द्ध (सम्पादित काव्य–संग्रह), 2002 (6)प्राकृत साहित्य एवं जैनदर्शन समीक्षा (प्रकाशनाधीन)
सम्प्रति :	सहायक आचार्य (वरिष्ठ) प्राकृत एवं जैन आगम विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं
सम्पादक :	'आभा' संस्थान समाचार, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं
सम्पर्क सूत्र :	जैन विश्वभारती संस्थान, (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं 341 306 (राजस्थान) फोन : 01581–24548

प्रकाशक
जैन अध्ययन एवं सिद्धान्त शोध – संस्थान
जबलपुर (म. प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org